बरगद

— रमेश वेदी

भारतीय द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला का सोलहवाँ प्रकाशन

बरगद

[बरगद वृक्ष का विस्तृत तथा प्रामाणिक विवरण और उस के विविध अङ्गों के उपयोग]

लेखक
श्री रामेश बेदी
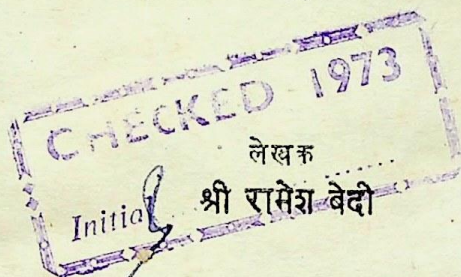
भूमिका लेखक
ब्रेवेट कर्नल रामनाथ चोपड़ा
केटो. सी. आई. ई., एम. ए., एम. डी., एस-सी. डी. (कैण्टब.),
एफ़ आर. सी. पी. (लण्डन), एम. पी. एस., एफ़. एन. आई.,
औनरेरी साइण्टिफ़िक एडवाइज़र, रिजनल रिसर्च लेबोरेटरी,
जम्मू-तवी ।

हिमालय वनस्पति संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।

प्रकाशक :
रामेश बेदी,
हिमालय वनस्पति संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रथम वार ११०० प्रतियां, मई १९६०।
मूल्य एक रुपया।
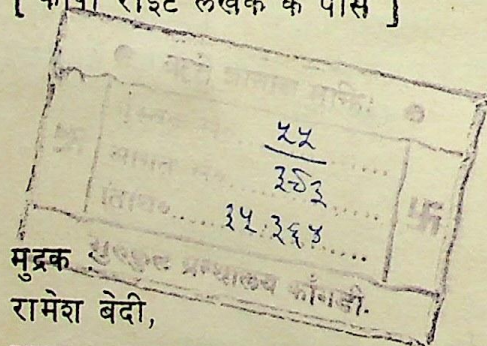
मुद्रक :
रामेश बेदी,
गुरुकुल मुद्रणालय,
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

भूमिका

भारत की जड़ी-बूटियों पर श्री रामेश बेदी देर से गवेषणात्मक अध्ययन कर रहे हैं। उन के द्वारा लिखी गई रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस दिशा में उन्होंने बहुत परिश्रम किया है। यद्यपि हमारे देश की वनस्पतियों का भिन्न-भिन्न पहलुओं से अनेक विद्वानों और अन्वेषकों ने अध्ययन किया है, परन्तु उन के यथासम्भव सभी दृष्टियों से अध्ययन करने के प्रयत्न नहीं किये गये थे। श्री बेदी जी की रचनाओं को देख कर मुझे प्रसन्नता हुई है कि उन्होंने भारतीय वनस्पतियों के अध्ययनों में विविध भाषाओं के नाम, प्राप्तिस्थान, खेती, संग्रह तथा भण्डारित करना, मात्रा, व्यापारिक पहलू, इतिहास, सांस्कृतिक तथा धार्मिक महत्त्व, रासायनिक संघटन, आयुर्वेदोक्त गुण, निर्मितियां, प्रभाव तथा कार्य, घरेलू तथा अन्य उपयोग, विविध रोगों में उपयोग इत्यादि प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का उल्लेख किया है। एक ही पौदे के बारे में ऐसी विस्तृत जानकारी हमें एक ही जगह पर अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती। विविध स्रोतों से ऐसी महत्त्वपूर्ण तथा विशद सूचनाएं प्राप्त और एकत्रित करना निस्सन्देह बड़ा श्रमसाध्य तथा खोजपूर्ण कार्य है। भारतीय वाङ्मय के अथाह सागर में गोता लगा कर उन्होंने हमें पेड़-पौदों के सम्बन्ध में प्राचीन मान्यताओं से भी परिचित करवाया है। यह एक महत्त्व की बात है, इस से हमें उन का जहां प्राचीन गौरव पता चलता है वहां एक नई दिशा में सोचने की प्रेरणा भी मिलती है।

जड़ी-बूटियों के इन अध्ययनों को श्री रामेश बेदी 'भारतीय द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित कर रहे हैं, जिस

के अन्दर 'बरगद' सोलहवां प्रकाशन है। श्री बेदी ने भेषजीय वनस्पतियों (मेडिकल बॉटनी) जैसे विषय को सर्वसाधारण के लिए सरल शैली में प्रस्तुत कर के प्रशंसनीय कार्य किया है। मेरी सम्मति में हमारे देश के अन्य वैज्ञानिकों को भी अपनी कृतियां राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा सर्वसाधारण तक पहुंचाने का प्रयत्न करना चाहिए। भारतीय जड़ी-बूटियों के सम्बन्ध में राष्ट्रभाषा हिन्दी में ऐसी विस्तृत और प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत करने के लिए मैं श्री बेदी जी को बधाई देता हूं।

जम्मू
१-४-६०

रामनाथ चोपड़ा।

विषय सूची

जड़ी-बूटियों के प्रामाणिक फ़ोटो

दवाओं में काम आने वाली जड़ी-बूटियों के फ़ोटो की मांग हमारे पास निरन्तर आती रहती है। उन के लिये हमने पूर्ण आकार (फुल साइज़) के बहुत से फोटो तैयार किये हैं। ये फ़ोटो बड़े आकर्षक तथा कलापूर्ण हैं। अनेक संस्थाओं ने इन्हें मंगा कर अपने विद्यालयों तथा संग्रहालयों (म्यूज़ियम) को सजाया है। आयुर्वेद के विद्यालयों में, मेडिकल कॉलेजों में, डिस्पेन्सरियों और औषधालयों में, हकीमों, वैद्यों और डॉक्टरों की दुकानों में और घरों में भी ये टांगे जांय तो स्थान की शोभा में चार चांद लगा देते हैं। सौन्दर्य के साथ-साथ इन की एक बड़ी विशेषता यह है कि इन्हें देख कर उस बूटी को झट पहिचाना जा सकता है। बॉटनी, आयुर्वेद, मैटीरिया मेडिका, निघण्टु और चिकित्सा शास्त्र पढ़ने और पढ़ाने वालों के लिये ये नितान्त उपयोगी हैं। कलाप्रेमियों के लिये ये फ़ोटो वस्तुतः स्पृहणीय सामग्री है। चालमुग्रा (तुवरक), कृष्णवट, रोहेड़ा, असगन्ध, मदनफल, दालचीनी, पद्माक, काजूपुटी, आंवला, सर्पगन्धा (रॉवुल्फिया सर्पेण्टाइना), कायफल, रॉवु-ल्फिया केनेसेन्स (सर्पगन्धा भेद), कम्पिल्ल, बकायन, बेला-डोना, भोजपत्र, धातकी, कलिहारी, रुद्राक्ष, मालकङ्गनी, लता-कस्तूरी, तालीश पत्र, अशोक, मालाकन्द, हरीतकी, नीलोत्पल, काला धत्तूरा, शाल्मली, हरश्रृङ्गार, कोविदार, माधवी, डिजि-टेलिस, चीनोपोडियम, शिवलिङ्गी, भाङ्ग, साबूदाना, श्योनाक, गाम्भारी, कटुकी, कपित्थ, वरुण, प्रियंगु, तेजबल, अमलतास, कदम्ब, दन्त, भल्लातक, मरोड़फली, कपूर, कपूर तुलसी आदि सैकड़ों वनस्पतियों के फ़ोटो हमारे पास तैयार हैं।

हिमालय वनस्पति संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

हमारा पुरस्कृत साहित्य
(भारतीय-द्रव्यगुण ग्रन्थमाला)

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि 'भारतीय द्रव्यगुण ग्रन्थमाला' के प्रकाशनों को विविध संस्थाओं ने अनेक प्रकार से समादृत किया है।

१९५६ में केन्द्रीय सरकार ने प्रौढ़ साक्षरों के लिये समस्त भारतीय भाषाओं की पुस्तकों की अखिल भारतीय प्रतियोगिता में 'देहात की दवाएं' नामक पुस्तक को श्रेष्ठ पुस्तक के रूप में मान्यता प्रदान की है।

उत्तर प्रदेश की आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकेडमी द्वारा १९५७ में 'देहात की दवाएं' पुस्तक को राज्य द्वारा स्वीकृत किया गया और सौ रुपये का पुरस्कार प्रदान किया गया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने 'लहसुन : प्याज़, तुलसी, शहद, मिर्च, सोंठ' पुस्तकों पर १९५२ में छह सौ रुपये के पुरस्कार से लेखक को सम्मानित किया।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने 'त्रिफला' पुस्तक पर स्वर्णपदक प्रदान कर के लेखक को सम्मानित किया है।

ये तथ्य इस ग्रन्थमाला की प्रामाणिकता और उपयोगिता पर स्वत: प्रकाश डालते हैं। सार्वजनिक तथा निजू पुस्तकालयों, ग्राम-पंचायतों, सामुदायिक विकास योजना-केन्द्रों, समाज-कल्याण-केन्द्रों और चिकित्सालयों में तथा वैद्यों, डॉक्टरों, ग्राम-सेवकों और सर्वसाधारण के पास ये पुस्तकें अवश्य रहनी चाहिएं। आज ही पूरा सेट मंगाइये।

पता—

हिमालय वनस्पति संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

बरगद

सब से पुराना नाम क्या था ?

हमारे देश में बरगद का सब से प्राचीन नाम न्यग्रोध है। बाद में इस पेड़ का नाम वट भी पड़ गया था। ऋग्वेद और सामवेद में न्यग्रोध और वट दोनों ही शब्द नहीं आये। इन दोनों संहिताओं में बड़ का वर्णन नहीं है। यजुर्वेद और अथर्व-वेद में वट शब्द नहीं मिलता। न्यग्रोध नाम से इन दोनों संहिताओं में बरगद का उल्लेख मिलता है। इसी तरह इन के बाद के साहित्य शतपथ (८०० ई. पू), ऐतरेय (८०० ई. पू.) आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों में; कात्यायन श्रौत सूत्र आदि सौत्र-ग्रन्थों में भी इस का न्यग्रोध के नाम से उल्लेख हुआ है। अब तक इस वृक्ष को वट नाम से नहीं जाना गया था।

वाल्मीकि के समय (४०० ई. पू.) इस वृक्ष को कहीं-कहीं वट कहने लगे थे क्योंकि आदि कवि ने रामायण में इस वृक्ष के लिए वट नाम भी दिया है। यह ठीक प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने अधिक स्थलों पर न्यग्रोध नाम ही लिखा है।

विलियम मोनियेर के अनुसार शायद वृत का प्राकृत रूप वट है। वृत का अर्थ घिरा हुआ है। हो सकता है कि वृत का अपभ्रंश वट हो, परन्तु वट (वेष्टने) धातु का अर्थ भी घेरना है।

ईस्वी पूर्व पहली शती में चरक के समय में वट नाम अच्छी तरह व्यवहार में आ चुका था। चरक में न्यग्रोध और वट दोनों नामों से बरगद के चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगों का वर्णन है। इस संहिता में न्यग्रोध शब्द बीस वार और वट पन्द्रह वार आया है।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में रचे गये काव्य-ग्रन्थों में यद्यपि दोनों नाम मिलते हैं परन्तु कवियों का झुकाव सम्भवतः न्यग्रोध नाम की ओर अधिक था। न्यग्रोध की तुलना में वट शब्द अधिक कठोर ध्वनि देता है। साहित्यिक कृतियों के लिए कवियों द्वारा कोमल शब्द के प्रति पक्षपात स्वाभाविक समझा जा सकता है। कविवर भट्ट नारायण (६०० ई प.) ने वेणीसंहार के चौथे और पांचवें दोनों अङ्कों में न्यग्रोध नाम दिया है, वट नहीं।

मध्य तथा उत्तरकालीन उपनिषदों में से निम्नलिखित उपनिषदों में इस वृक्ष का वट नाम से उल्लेख हुआ है — कृष्णोपनिषद्, तारोपनिषद्, सिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, रामपूर्वतापिन्युपनिषद्, दत्तात्रेयोपनिषद्. महोपनिषद्, शिवोपनिषद्, सामरहस्योपनिषद्, सर्वसारोपनिषद्, नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, दक्षिणामूर्त्ति उपनिषद् और मैत्रि उपनिषद्। इन में तथा अन्य उपनिषदों में भी न्यग्रोध नाम प्रायः नहीं मिलता। छान्दोग्योपनिषद् और दक्षिणामूर्ति उपनिषद् में एक-दो स्थलों पर न्यग्रोध शब्द का उपयोग हुआ है। उपनिषदों में सब मिला कर लगभग सत्रह वार वट शब्द आया है और न्यग्रोध केवल दो-तीन वार। यह तथ्य संकेत करता है कि संस्कृत साहित्य में से अब न्यग्रोध शब्द प्रायः निकल गया था।

संस्कृत में इकतालीस नाम[1]

वैद्यक शब्द सिन्धु और जामनगर के चरक आदि सग्रह ग्रन्थों में बड़ के सब मिला कर इकतालीस नाम संगृहीत हैं।

१क न्यग्रोधो बहुपाद् वटः। — अमर कोष, वनौषधि वर्ग।

नीचे की तालिका में यह दिखाया गया है कि ये नाम मूलतः किन-किन ग्रन्थों में आये हैं। अन्तिम स्कन्ध (कॉलम) में वे नाम रखे गये हैं जिन के सम्बन्ध में हम यह पता नहीं कर सके कि वे नाम मूलतः किस ग्रन्थ में आये हैं।

ख वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः।
क्षीरी वैश्रवणावासो बहुपादो वनस्पतिः॥
— ध.नि., आम्रादि.५; ७६।

ग स्यादथ वटो जटालो न्यग्रोधो रोहिणोऽवरोही च।
विटपी रक्तफलश्च स्कन्धरुहो मण्डली महाच्छायः॥
शृङ्गी यक्षावासो यक्षतरुः पादरोहिणो नीलः।
क्षीरी शिफारुहः स्याद्बहुपादः स तु वनस्पतिर्नवभूः॥
— रा.नि., आम्रादि.११; ११३–११४।

घ वटो रक्तपदा क्षीरी बहुपादो वनस्पतिः।
यक्षावासः पदारोही न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः॥
— म.पा.नि., वटादि.; १।

ङ वटः क्षीरी रक्तफलो न्यग्रोधो यक्षवासकः।
बहुपादः पादरोही शृङ्गी वान्तो वनस्पतिः।
स्कन्धजोऽस्य फलं प्रोक्तं नैयग्रोधं च कांचनम्॥
— कै.दे.नि., ओ.व; ३८७।

च वटो रक्तफलः शृङ्गी न्यग्रोधः स्कन्धजो ध्रुवः।
क्षीरी वैश्रवणावासो बहुपादो वनस्पतिः॥
— भा.प्र., वटादि.; १।

अमरकोष	धन्वन्तरिनिघण्टु	राजनिघण्टु	मदनविनोदनिघण्टु	कैयदेव निघण्टु	भावप्रकाश	
५००-८००ई.प.	८००ई.प.से पूर्व	१२वीं शती	१३७४ई.प.	१४५०ई.प.	१५००ई.प.	
१ न्यग्रोध	१ न्यग्रोध	१ न्यग्रोध	१ न्यग्रोध	१ न्यग्रोध	१ न्यग्रोध	
२ वट	२ वट	२ वट	२ वट	२ वट	२ वट	
	३ ध्रुव		३ ध्रुव		३ ध्रुव	
	४ क्षीरी	३ क्षीरी	४ क्षीरी	३ क्षीरी	४ क्षीरी	
	५ शृङ्गी	४ शृङ्गी		४ शृङ्गी	५ शुङ्गी	शुङ्ग
		५ रोहिणी				
	६ रक्तफल	६ रक्तफल	५ रक्तपदा	५ रक्तफल	६ रक्तफल	
		७ मण्डली				
		८ महाछाय				बृहच्छाय
						जटी
		९ जटाल				जटिल
		१० अवरोही				

		११ पादरोहिण	६ पदारोही	६ पादरोही		
		१२ शिफारुह				
		१३ स्कन्धरुह				
	७ स्कन्धज		७ स्कन्धज	७ स्कन्धज	७ स्कन्धज	
३ बहुपाद्	८ बहुपाद	१४ बहुपाद	८ बहुपाद	८ बहुपाद	८ बहुपाद	बहुपात्
						बृहत्पाद
		१५ यक्षवास	९ यक्षावास	९ यक्षवासक		
		१६ यक्षतरु				
	९ वैश्रवणावास				९ वैश्रवणावास	
						वैश्रवणालय
						वैश्रवणोदय
						यमप्रिय
	१० वनस्पति	१७ वनस्पति	१० वनस्पति	१० वनस्पति	१० वनस्पति	
						वृक्षनाथ
						कर्मंज
		१८ विटपी				नन्दी
		१९ नील		११ दान्त		भाण्डीर

संस्कृत के नामों का अर्थ

परिचयज्ञापक नाम — वट (दूसरे पर लिपट जाने वाला; वटति वेष्टयति मूलेन वृक्षान्तरम्); क्षीरी (दूध वाला पेड़); जटाल (जटाओं वाला); बहुपाद (जिस के बहुत-से पैर – जटाएं होती हैं); रक्तपदा (नई जटाएं लाल होती हैं); अवरोही (जटाओं के द्वारा नीचे की ओर बढ़ने वाला); मण्डली (शाखाओं के विस्तार से एक बड़ी परिधि बनाने वाला); विटपी (शाखाओं और पत्तों के बड़े घेरे वाला वृक्ष); महाछाय (बड़ी छाया देने वाला); न्यग्रोध (धूप और बारिश को अपने नीचे गिरने से रोकने वाला; न्यक् अधो देशे रोधनात्); यक्षतरु, यक्षावास, यक्षावासक (यक्षों का आवास – घर) ; वैश्रवणावास (कुबेर का घर); ध्रुव (स्थिर, सैंकड़ों वर्षों तक बना रहने वाला); वनस्पति (वन का राजा); नील (पत्ते गूढ़े हरे या नीले-काले होते हैं); शृङ्गी, शुङ्गी (नये पत्ते – शुङ्ग – सींग जैसी नोकीली कलिकाओं में लिपटे हुए प्रकट होते हैं); रोहिण, रक्तफल (लाल फल वाला)।

उत्पत्तिबोधक नाम — स्कन्धज, स्कन्धरुह (बड़ी शाखाओं से पैदा हो जाने वाला); शिफारुह (छोटी शाखाओं से उग आने वाला); पादरोही, पदारोही (पैरों – जटाओं के द्वारा उगने वाला); दान्त (जटाओं की विशेष परिचर्या कर के इस की वृद्धि और उत्पत्ति को सधाया जा सकता है)।

अन्य भाषाओं में नाम

अरबी — कबिरुल् अश्जार ।
अंग्रेज़ी — दि बनियन ट्री ।
कन्नड़ — आलदमर, गोड़िमर, गोणिमर, बसरिमर (मर=

	वृक्ष)।
गुजराती	वड, वडलो ।
तामिल	आलमरम्, अरसिमरम् ।
तेलगु	मर्रिचट्टु (चट्टु=वृक्ष) ।
पाली	नग्गोह, वडरुक्ख[1] ।
पुर्तगाली	Arbor de Raiz, Albero de laiz. दोनों शब्दों का अर्थ है 'जड़ों वाला वृक्ष' ।
पंजाबी	बोड़, बोहड़ ।
फ़ारसी	दरख्तेरीश ।
मराठी	वड ।
मलयालम्	आलवृक्षम्, आलमरम् ।
लैटिन	फ़ाइकस बेंगालेन्सिस (Ficus bengalensis Linn. बंगाल का ओदुम्बर), फ़ाइकस इण्डिका, यूरोस्टिग्मा बेंगालेन्से (Urostigma bengalense Gasp.) ।
रूसी	फ़ीगोवोए देरेवो ।
स्यामी	सई ।
हिन्दी	बड़, बरगद ।

प्राप्तिस्थान

भारत के पर्वतीय जङ्गलों में सब जगह फैला हुआ है । जङ्गल-प्रदेशों में खूब मिलने वाले वृक्षों में चरक ने बड़ गिनाया है ।[2] हिमालय के निचले भूखण्ड में और भारतीय प्रायद्वीप में देशीय है । भारत और पाकिस्तान में प्रायः सर्वत्र बोया हुआ

---

१ पाइअलच्छी नाम माला, धनपाल, संवत् १९७३, पृ.४० ।

२ देखें : च.क.१; ८ ।

या स्वयं उगा हुआ मिल जाता है ।

सोम से प्रादुर्भाव

ब्राह्मण-ग्रन्थों में न्यग्रोध का प्रादुर्भाव इस प्रकार बताया है । प्राचीन काल में देवताओं ने कुरुक्षेत्र के ऊपर यज्ञ कर के स्वर्गलोक की प्राप्ति की थी । उस यज्ञ-देश में देवों ने सोम-चमस को नीचे की ओर मुख कर के स्थापित कर दिया । यह सोमचमस ही न्यग्रोध बन गया ।[1] संस्कृत में अधोमुख कर के स्थापित करने को न्युब्ज कहते हैं । इसलिए, इस तरह उद्-भूत वृक्ष को न्युब्ज कहने लगे । आचार्य सायण के समय (१४०० ई प.) में भी कुरुक्षेत्र में न्यग्रोध को न्युब्ज कहते थे । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भूमि पर न्यग्रोध के वृक्ष सब से पहले कुरुक्षेत्र में उत्पन्न हुए । उन से ही सब जगह न्यग्रोध फैला है ।[2]

वे चमस क्योंकि न्यञ्च (अधोमुख) हो कर प्रादुर्भूत हुए इस कारण 'न्यङ्क् रोहति' इस व्युत्पत्ति से इसे न्यग्रोह कहने लगे । बोलचाल में ह का ध बन जाने से न्यग्रोध शब्द बन गया ।[3] नीचे की ओर मुख कर के रखे गये चमसों के वट वृक्ष

---

१ न्यग्रोधश्चमसैरिति । यत्र वै देवा यज्ञेनायजन्त त एतांश्चमसान्न्यौब्जंस्ते न्यञ्चोऽरोहंस्तस्मान्न्यञ्चो न्यग्रोधा रोहन्ति ।

— शतपथ, १३, २, ७, ३ ।

२ यतो वा अधिदेवा यज्ञेनेष्टु वा स्वर्गं लोकमायंस्तत्रैतांश्चमसान्न्युब्जंस्ते न्यग्रोधा अभवन्न्युब्जा इति हाप्येनानेतर्ह्याचक्षतेकुरुक्षेत्रे ते ह प्रथमज न्यग्रोधानां तेभ्यो हान्येऽधिजाताः ।

— ऐ.ब्रा., ख.४, अ.३५; ३० ।

३ ते यन्न्यञ्चोऽरोहंस्तस्मान्यङ् रोहति न्यग्रोहो न्यग्रोहो वै नाम

के रूप में परिणत हो जाने पर चमसों में विद्यमान रस नीचे की ओर जाने लगा। वह रस विशेष अवरोह (जटाएं) बन गये और जो रस ऊपर चढ़ा वह फल बन गये। ये फल सोम-रस के ही रूपान्तर हैं ।[1]

शतपथ ब्राह्मण के एक आलंकारिक वर्णन में इन्द्र की हड्डियों से गिरी स्वधा द्वारा न्यग्रोध की उत्पत्ति लिखी है।[2]

सामान्य परिचय

दंशरोमकुल (अर्टिकेसी) नामक नैसर्गिक वर्ग (नेचुरल ऑर्डर) में बड़ एक बड़ा, फैलने वाला, प्रपाती (deciduous) वृक्ष है। प्रायः सौ फ़ीट या इस से भी अधिक ऊंचा पहुंच जाता है। उत्तर भारत की अपेक्षा बङ्गाल में इस की जटाओं तथा शाखाओं की अधिक वृद्धि होती है। परन्तु उत्तर भारत में व सूखे स्थानों पर तने की मोटाई अधिक होती है। तना प्रायः पच्चीस-तीस फ़ीट तक मोटा हो जाता है। प्रतीत होता है कि जङ्गल में यह इतना अधिक नहीं फैलता जितना खुले में।

पत्ते बड़े, चर्म सदृश, गूढ़े स्निग्ध-हरित, लम्बाई में चार से आठ इञ्च और चौड़ाई में दो से पांच इञ्च तक होते हैं, ये छोटे दृढ़ डण्ठलों के साथ लगे रहते हैं। प्रायः सब औदुम्बर (fig) वृक्षों की तरह बड़ में भी दो शल्क (scales) होते

तन्न्यग्रोहं सन्तं न्यग्रोध इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः। — ऐ. ब्रा., ख. ४, अ. ३; ३०।

१ तेषां यश्चमसानां रसोऽवाङैत्तोऽवरोधा अभवन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि। — ऐ. ब्रा., ख. ५, अ. ३५; ३१।

२ अस्थिभ्य एवास्य स्वधाऽस्रवत्स न्यग्रोधोऽभवत्।
— श. ब्रा., १२, ३, २, ७; ६।

हैं जो पत्र-कलिका को ढकते हैं। पत्ते की वृद्धि के साथ शल्क गिर जाते हैं और पत्ते के डण्ठल के आधार पर शाखा के चारों ओर छल्ले जैसा एक निशान छोड़ जाते हैं। नये पत्ते सामान्यतया फ़रवरी और मार्च में प्रकट होते हैं, परन्तु कभी-कभी सितम्बर और अक्टूबर में भी निकलते रहते हैं। नये पत्तों में एक आकर्षक आरक्त (reddish) आभा होती है ।

शुष्क प्रदेशों में यह वृक्ष थोड़े समय के लिए गरमियों में पत्र रहित हो जाता है परन्तु सामान्यतया यह सदा हरा रहने वाला वृक्ष है।

फल

फ़रवरी और मई के बीच में फल पक कर दीप्त (bright) रक्त हो जाते हैं। हरिद्वार में कुछ पेड़ों पर मैंने सितम्बर तक भी चमकीले लाल फल लगे देखे हैं। वैसे इस प्रदेश में इन दिनों बरगद के अधिक वृक्ष फलहीन रहते हैं। कभी-कभी पीले रङ्ग के फल भी देखे जाते हैं। पक्षी, चिमगादड़ और हिरण आदि वन्यपशुओं की मुंहमांगी दावत का यह सुनहरा अवसर होता है। किन्हीं वृक्षों पर तो दिसम्बर तक भी फल मिल जाते हैं।

वृक्ष की बड़ी काया की तुलना में फल बहुत छोटे होते हैं। संस्कृत के एक कवि ने इस पर मज़ेदार व्यङ्ग कसा है — 'खूब फैले हुए ओ बरगद ! तेरी बड़ी शाखाओं पर सैंकड़ों पक्षी आश्रय लेते हैं और वृक्षों का तू सरदार है। मन में कुढ़े ना तो ज़रा-सी बात कह दूं ! झोंपड़ी की छत पर ही फैल जाने वाली छोटे-से घेरे वाली पेठे की बेल अपने फलों से तेरे फलों पर

हंसती है।[1]'

संस्कृत का एक सुभाषित इस प्रकार है — न्यग्रोध के कुछ ही फल ठीक तरह पकते हैं। उन में भी बहुत कम ऐसे होते हैं जिन में बीजों से पौधे फूट निकलें। उन में भी विरला ही कोई ऐसा भला पौधा निकलता है जो इतना बड़ा हो जाय कि उस के नीचे गरमी से सताया हुआ आदमी अपनी ग्लानि को दूर करने के लिए दौड़ता हो।[2] यही भाव महोपनिषद् में इस प्रकार व्यक्त किया है — यह सारा संसार आशा रूपी जाल है और वैसा ही निष्फल है जैसे कि वट के अधिकांश बीज निष्फल होते हैं।[3]

सुभाषितावलि में कहा है — न्यग्रोध का बीज मामूली-सा अंकुर बन कर नहीं रह जाता। वह या तो महावृक्ष का रूप

---

१ विस्तीर्णो दीर्घशाखाश्रितशकुनिशतः शाखिनामग्रणिस्त्वं,
न्यग्रोधक्रोधमन्तः प्रकटयसि न चेद्वच्मि किञ्चित्तदल्पम्।
जल्पोऽप्येष त्रपाकृत्प्रलघुपरिकरा कापि कूष्माण्डवल्ली,
पल्लीपृष्ठप्रतिष्ठा हसति हि फलेन त्वत्फलानां किमन्यत्॥

— सुभाषितरत्नभाण्डागार।

२ न्यग्रोधे फलशालिनि स्फुटतरं किञ्चित्फलं पच्यते।
बीजान्यंकुर गोचराणि कतिचित् सिध्यन्ति तस्मिन्नपि॥
एकस्तेष्वपि कश्चिदंकुरवरः प्राप्नोति तामुन्नतिम्।
यामासाद्य निदाघपीडिततनुर्ग्लानिच्छिदे धावति॥

— सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृ. १४१, १९५२।

३ इमं संसारमखिलमाशापाशविधायकम्।
दधदन्तःफलैर्हीनं वटधाना वटं यथा॥

— महोपनिषद्, अ. ५; १३३।

धारण कर लेता है या बिलकुल नष्ट हो जाता है।[1]

क्या फूल नहीं होते ?

लगता ऐसा है कि बड़ फूल नहीं धारण करता, केवल फल ही पैदा करता है। वास्तव में ऐसी बात नहीं है। फूल सूक्ष्म होते हैं और मांसल ग्राह (receptacle) में तिरोहित रहते हैं। ये ग्राह या फल डण्ठल-रहित होते हैं और लाल प्रबदरों (cherries) की तरह पत्तों के अक्षों के साथ जोड़ों में उगते हैं। नर और मादा दोनों लिंगों के छोटे-छोटे अनेक फूल एक ही ग्राह के अन्दर विद्यमान रहते हैं। नर फूल ग्राह के मुख के पास इकट्ठे लगे रहते हैं जिन में चार निदल (sepals) और एक पुंकेसर (stamen) होते हैं।

फूलों के साथ ही छोटे-छोटे कीट रहते हैं जिन्हें 'प्रोदुम्बर कीट' (fig insects) कहते हैं। इन कीटों के बिना वृक्ष बीज नहीं पैदा कर सकता। प्रोदुम्बर (Ficus) की प्रत्येक जाति के साथ एक वरट का सम्बन्ध है। सिरे पर अवस्थित छिद्र से वरट अन्दर प्रवेश करता है और फूलों के अन्दर अपने अण्डे रखता है। अण्डों से कीड़े निकल कर परिपक्व हो जाते हैं। अपने घर को छोड़ते हुए ये नये कीट नर फूलों के पराग से अवधूलित हो जाते हैं। तब ये दूसरे फल में घुसते हैं और उसे निषेचित करते हैं।

बरगद, गूलर आदि दूध वाले पेड़ों में फूल न आने के लोक-

---

१ महातरुर्वा भवति समूलो वा विनश्यति ।
कुनांरप्रक्रियामेति न्यग्रोधकणिकांकुरः ॥

—सुभाषितावलि; ७८८ ।

विश्वास के विपरीत महर्षि वाल्मीकि ने इन वृक्षों के फूलों का उल्लेख स्पष्ट किया है। वाल्मीकि ने दिखाया है कि बालि का वध कर के सुग्रीव को जब शासन दिया गया है तो अभिषेक की सामग्री में बरगद आदि क्षीरी वृक्षों के प्ररोह और फूल भी लिये गये थे।[1] पुराने लेखकों के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का यह विशिष्ट उदाहरण है।

नगरों के चारों ओर

पुराकाल में नगरों और गांवों के आस-पास बरगद या पीपल को रोपने का खूब रिवाज़ था। १९०८ के 'इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया' की जिल्दों को देखने से पता चलता है कि बहुत से नगरों को ये वृक्ष घेरे खड़े थे। वट वृक्षों के मध्य में बसा होने से बड़ौदा पहले वटोदरा कहलाता था; गुजराती में तो अब भी संस्कृत के वटोदर शब्द का अपभ्रंश वडोदरा उच्चारित होता है।

धर्मग्रन्थों से पता चलता है कि हमारी राज्य-व्यवस्था में सीमाओं का निर्धारण करने के लिए ग्रामों और नगरों के चारों ओर सीमावृक्ष के रूप में बरगद और पीपल आदि रोपे जाते थे।[2] स्ट्रेट्स सेटलमेण्ट्स में तथा अन्य स्थानों पर यह पथवृक्ष के रूप में बोया जाता है।

संस्कृत की एक लोकोक्ति में बड़ की छाया को गरमियों में

---

१ सक्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान् कुसुमानि च।
— रामायण, ४, २६; २६।

२ सीमावृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधोऽश्वत्थकिंशुकान्।
शाल्मलीसालतालांश्च क्षीरीणांश्चैव पादपान्॥
— मनु।

जहाँ शीतल बताया है वहां सरदियों में गरम बताया है ।[१]

बोना

बीजों से या कर्तनों (cuttings) से वृक्ष उगाया जा सकता है। पकने के साथ ही बीजों को बो देना चाहिए। गमलों या मंजूषाओं (बक्सों) में बोना अच्छा रहता है। ईंट या कोयले के बारीक चूरे के साथ मिला कर बीज बोने चाहिएं। दिन की गरमी से बचाने के लिए छोटे पौदों को छाया में रखना चाहिए। कर्तनों से लगाना हो तो आठ-दस फ़ीट लम्बी कर्तनों को जनवरी से मार्च तक बोना चाहिए। बरसात आने तक इन्हें पानी देना ज़रूरी होता है। सिंचाई की व्यवस्था न हो सके तो जुलाई में बरसात शुरू होने पर बोयें। जनवरी-मार्च में बोई गई कर्तनों की अपेक्षा ये कर्तनें कम सफल होती हैं। एक तरीका यह भी है कि छोटी कर्तनों को गमलों या टोकरियों में मार्च में लगा कर अच्छा पानी देते रहें और बरसात शुरू होने पर इन्हें अलग कर के यथास्थान रोप दें। बरगद के पेड़ को घर के पूर्व में बोने का विधान है।

अवध के १९०७ तथा १९०८ के सूखे ने यह सिद्ध कर दिया था कि यह वृक्ष निश्चित रूप से शोष-सहिष्णु (drought-hardy) है। घोर तुहिन पत्तों को क्षतिग्रस्त कर देती है। परन्तु, पुनः स्वास्थ्य लाभ करने की शक्ति इस वृक्ष में अच्छी है। १९०५ के उत्तर भारत के असाधारण तुहिन में वृक्ष को बहुत अधिक हानि नहीं पहुंची थी।

---

१ कूपोदकं वटच्छाया श्यामा स्त्री तरुणं दधि।
शीतकाले भवेदुष्णं ऊष्णकाले च शीतलम्॥

अक्षयवट

संस्कृत के महाकाव्यों का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि प्रयाग में ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में बरगद का एक महान् वृक्ष था जो मध्यकाल तक वहां खड़ा था। चित्र-कूट को जाते हुए सीता जब उस वट के पास पहुंची तो उन्होंने अनेक वृक्षों से घिरे हुए उस महावृक्ष को नमस्कार किया था और अपने पातिव्रत धर्म को पालन करने की सामर्थ्य उस श्याम-वट से माँगी थी। हाथ जोड़ कर सीता ने उस से निर्विघ्नता के लिए आशीर्वाद भी मांगा था।[1] वनवास से जब राम लौट रहे हैं तो यह वट चमकीले लाल फलों से सुशोभित हो रहा था। उस के सौन्दर्य से विमुग्ध हो कर श्रीराम सीता को कहते हैं कि 'तूने पहले जिस से याचना की थी वह प्रसिद्ध श्यामवट यह है। नीलम के ढेर में जैसे पुखराज जड़े हों, फला हुआ यह श्याम-वट उसी तरह दीप्त हो रहा है।'[2] श्यामवट के गूढ़े हरे या नीले रंग के पत्तों की यहां नीलम (गारुड़ मणि) से तुलना की गई है और दीप्त लाल फलों की पुखराज (पद्मराग) से। महर्षि वाल्मीकि (४०० ई. पू.) ने जिसे श्यामन्यग्रोध और कविगुरु कालिदास (६०० ई प.) ने जिसे श्यामवट लिखा है। आठवीं शती के भवभूति ने भी उसे श्यामवट के नाम से ही

---

१ तेषु ते प्लवमुत्सृज्य प्रस्थाय यमुनावनात्।
श्यामं न्यग्रोधमासेदुः शीतलं हरितच्छदम्॥
न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिव्रतम्॥
— रामा., अयो. का. २, स. ५५; २३–२४।

२ त्वया पुरस्ताद् उपयाचितो यः, सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां, सपद्मरागः फलितो विभाति॥
— रघु., १३; ५३।

उल्लेख किया है । लक्ष्मण कहते हैं कि 'कालिन्दी के तट पर और चित्रकूट को जाने वाली सड़क के किनारे पर अवस्थित जिस श्याम नामक वट को भरद्वाज ने बताया था वह यहां खड़ा है ।'[1] उस समय तक के लेखकों ने यद्यपि इसे एक असाधारण वृक्ष समझा था परन्तु इसे दिव्यता और अलौकिकता प्रदान करने वाले बाद के लेखक प्रतीत होते हैं । मुरारी के समय (१०५०–११३५) यह निश्चित रूप से अद्भुत शक्तिसम्पन्न ऐसा वृक्ष माना जाने लगा था जिस की छाया में रहने वाले परंज्योति के साथ निवास करते हुए विश्वास किए जाते थे ।[2]

दो सौ ईस्वी पूर्व के लगभग महर्षि व्यास ने प्रयाग के पास गय पर्वत पर उगे हुए एक वट वृक्ष को अक्षयवट नाम दिया था । पांडवों ने वनवास में एक चौमासा उसी के नीचे बिताया था ।[3] यदि यह वही सीता जी वाला श्यामन्यग्रोध था तो न जाने क्यों काव्य-रचयिताओं की कल्पनाओं को अक्षयवट जैसे कल्पनाप्रसूत नाम ने प्रभावित नहीं किया ? क्योंकि काव्यों में

---

१ अयमसौ भरद्वाजावेदित चित्रकूटयामिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम । — उत्तर रा.च., अङ्क १, पृ. १६ ।

२ श्यामो नाम वटः सोऽयम् एतस्याद्भुतकर्मणः ।
छायामप्यधिवस्तव्यैः परंज्योतिर्निषेव्यते ॥
— अनर्घराघव, अङ्क ७; १२६ ।

३ तत्र ते पाण्डवा वीराश्चातुर्मास्यैस्तदेजिरे ॥
ऋषियज्ञेन महता यत्राक्षयवटो महान् ।
अक्षये देवयजने अक्षयं यत्र वै फलम् ॥
ये तु तत्रोपवासांस्तु चक्रुर्निश्चितमानसाः ।
— म. भा., वन. ९५; १३–१५ ।

तो बहुत देर तक इसे श्यामवट या श्यामन्यग्रोध ही कहते रहे थे। कहीं ऐसा तो नहीं कि अक्षयवट की महत्ता वाले ये श्लोक व्यास की रची हुई महाभारत में न हों और बाद के किसी लेखक ने जोड़े हों ? महाभारत तथा पुराणों में वर्णित अक्षयवट के आख्यान से प्रेरित हो कर अनर्घराघव के टीकाकार रुचिपति ने यद्यपि प्रयाग के उसी श्यामन्यग्रोध को अक्षयवट नाम दिया तथापि प्रतीत होता है कि काव्यग्रन्थों में इस वृक्ष का नाम श्यामन्यग्रोध या श्यामवट ही रहा, अक्षयवट नहीं।

अमरकोष (५००–८०० ई.प.) के नानार्थवर्ग में श्याम शब्द आया है।[१] अमरकोष के टीकाकार भानु जी दीक्षित (१६३० ई.प.) ने इस की व्याख्या में मेदिनीकोष (१३०० ई. प.) के उद्धरण से उसे प्रयाग का श्यामवट बताया है।[२] हेमचन्द्र (१०८८--११७२ ई. प.) को उद्धृत करते हुए भी भानु जी दीक्षित ने प्रयाग के वट को श्यामवट लिखा है।[३] अक्षयवट नहीं।

गोस्वामी तुलसीदास जी (१५३२--१६२३ ई. प.) ने प्रयाग के संगम पर उगे हुए बरगद को अक्षयवट नाम दिया है। उस के विशाल छत्र को उन्होंने मुनियों के मन को मोहने वाला बताया है।[४]

---

१ देखें : अमरकोश, काण्ड ३, नानार्थवर्ग ३।

२ श्यामो वटे प्रयागस्य वारिदे वृद्धदारके। — मेदिनी।

३ श्यामोऽम्बुदे शितौ। हरिते प्रयागवटे कोकिले वृद्धदारुके। —हैम.।

४क संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अक्षयवट मुनि मन मोहा॥

ख परसि अछयबट हरखहिं गाता। — रामचरित मानस।

अक्षयवट का शाब्दिक अर्थ है — न क्षीण होने वाला बरगद। बरगद वृक्षों में सामान्य रूप से यह विशेषता होती है। जिस बरगद में यह विशेषता अधिक हो उसे अक्षयवट कह देते थे। इस प्रकार का एक बरगद गया में भी था। प्रयाग और गया दोनों के वटवृक्षों को अक्षयवट के नाम से हिन्दुओं ने अनेक शताब्दियों तक बड़े आदर से देखा है। संस्कृत साहित्य में प्रयाग तथा गया के अक्षयवट अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। ब्रह्मपुराण (अध्याय १६१; ६६-६७) में गोदावरी माहात्म्य के अन्तर्गत विन्ध्य के उत्तर में एक अक्षयवट का उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण (अध्याय ३३; ३२-३३) में नर्मदा के वट का वर्णन है जहां पुलस्त्य ऋषि ने तप किया था।

प्रलय में भी अविनाशी

महा प्रलय की कल्पना में विपुल जलराशि के बीच में एक विशाल न्यग्रोध वृक्ष की विस्तीर्ण शाखा पर दिव्य शिशु विश्राम करते हैं।[1] अपने पैर के अंगूठे को वे मुख में चूस रहे होते

१क ततः कदाचित् पश्यामि तस्मिन् सलिलसंप्लवे।
न्यग्रोधं सुमहान्तं वै विशालं पृथिवीपते॥
शाखायां तस्य वृक्षस्य विस्तीर्णायां नराधिप।
पर्यंके पृथिवीपाल दिव्यास्तरणसंस्तृते॥
उपविष्टं महाराज पूर्णेन्दुसदृशाननम्।
फुलपद्मविशालाक्षं बालं पश्यामि भारत॥
— म.भा., आरण्यक पर्व १८६; ८१-८३।

ख ततस्तस्यैव शाखायां न्यग्रोधस्य विशांपते।
आस्ते मनुजशार्दूल कृत्स्नमादाय वै जगत्॥
— म.भा., आदि पर्व, १८६; ११४।

हैं।[1] सर्वत्र जल भर जाने से स्थावर और जङ्गम सभी कुछ नष्ट हो जाता है।[2]

न्यग्रोध के पलङ्ग पर सोये हुए आदि पुरुष से ही पुनः सृष्टि का आरम्भ होता है। महाभारत की इस कल्पना को प्रयाग तथा गया के अक्षयवट में अन्तर्निहित कर दिया गया है। प्रयाग माहात्म्य शती में इस का विस्तृत वर्णन व माहात्म्य है। उस में से कुछ स्थल हम संक्षेप में यहां दे रहे हैं।

गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर यह अक्षयवट स्थित है।[3] यह महान् वट एक बड़े आश्चर्य का वृक्ष है।[4]

सफ़ेद व नीली गङ्गा और यमुना नदियां जिस के चंवर हैं और जिस में बरगद के पेड़ का छत्र इतना बड़ा है कि साक्षात् नीला आकाश बन गया है। बरगद के वृक्षों का राजा जहां

---

१ जठरेऽखिलमाधाय त्वयि स्वपिति माधवः।
कृत्वा मुखाम्बुजे पादौ नमोऽक्षय्यवटायते॥
—प्र.मा.श., पूर्वार्द्ध, ११७, ३९; २५।

२ यत्र चैकार्णवे शेते नष्टे स्थावरजंगमे।
सर्वत्र जलसम्पूर्णे वटे बालवपुर्हरिः॥
—प्र.मा.श., पू.९३, ३२; ७।

३ स्वयमेवखिलश्रेष्ठस्ततोऽक्षय्यवटान्वितः।
कालिन्द्याः गंगाया वाराया यथोत्तरसमन्वितः॥
—प्र.मा.श., पू.९५, ३२; ४६।

४ अथाप्येकं महाश्चर्यं प्रयागे दृष्टमद्य वै।
एको महान्वटो वृष्टः सर्वाश्चर्यमयो हि सः॥
—प्र.मा.श., २१२, ७१; १०।

५ सितासिते यत्र तरंगचामरे, नद्यौ विभातः मुनिभानुकन्यके।
नीलातपत्रं वट एव साक्षात्, स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥
—प्र.मा.श., पू., १२; ३६।

सिर के आभूषण के समान विराजमान है।[१] इस वट के नीचे शिव भी अपने ताण्डव से माधव को सन्तुष्ट करते हैं।[२] हरित-मणि के समान सुन्दर अक्षयवट की छाया देवताओं को भी हर्ष देती है।[३] सब देवों और ऋषियों से समादृत इस वट मूल में ब्रह्मा ने दस यज्ञ किये थे।[४]

'माधव उतनी प्रसन्नता से वैकुण्ठ में नहीं रहते जितनी प्रसन्नता से तीर्थराज के अक्षयवट पर रहते हैं'।[५] 'इस वट की रक्षा सदा शूलपाणि महेश्वर करते हैं'।[६] उस के मूल में ब्रह्मा,

---

१ क्षेत्रचूडामणिर्यत्र, राजते वटवृक्षराट् ।
शूलिताण्डवसंहृष्ट, माधवो वासमंगलः ॥
— प्र.मा.श., पू., १६; ६।

२ परमो वैष्णवो योगी, शिवोऽपि शिवकृत्सताम् ।
वटमूलं समासाद्य, माधवानुग्रहेच्छया ॥
— प्र.मा.श., पू., २५; १।

३ अक्षय्यवटसुच्छाया, हरितोपलशोभिता ।
हर्षदा देवतादीनां, नित्यं यत्र प्रसर्पति ॥
— प्र.मा.श., पू., १८, ५६; ५।

४ वटमूलेति विख्यातं, सर्वदेवर्षि सम्मतम् ।
यत्रेष्टं ब्रह्मदेवेन, क्रतूनां दशकेन च ॥
— प्र.मा.श., ६३, ३२; ६।

५ वैकुण्ठेन तथा हृष्टो वसते माधवः प्रभुः ।
प्रसन्नस्तीर्थराजे च यथास्त्वक्षय पादपे ॥
— प्र.मा.श., ६२, ३२; ५५।

६ तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः ।
— प्र.मा.श., पू.१००, ३४; २०।

बीच में विष्णु और अग्रभाग में शिव निवास करते हैं'।[१] 'महा-प्रलय के समय समस्त संसार के जलमय हो जाने पर माधव के सोने के लिए बरगदों का यह राजा पलङ्ग बना था'।[२] 'सब रूपों को समेट कर ब्रह्माण्ड को अपने पेट में रख कर बालरूप धारण कर के इस अक्षयवट पर वे सोते हैं'।[३] 'कल्पवृक्ष और उस के स्वरूप में भेद नहीं'।[४] 'ऐसा वृक्ष ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है'।[५] 'इस की पूजा करने से मनोरथ सिद्ध होते हैं'।[६] 'यात्रा पर आने वाले नर-नारी विशुद्ध चित्त से इस की पूजा करने से

---

१ त्वन्मूले वसते ब्रह्मा तव मध्ये जनार्दनः।
त्वदग्रे वसते शूली तादृशं त्वां नमाम्यहम्॥
— प्र.मा.श., पू.११७, ३६; २६।

२ एकार्णवे महाकल्पे सुषुप्तो माधव प्रभोः।
पर्यंक वटराज त्वं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥
— प्र.मा.श., ११८, ३६; ३८।

३ सर्वरूपाणि संहृत्य बालरूपधरस्ततः।
ब्रह्माण्डमुदरे कृत्वा शयेताक्षय्यपादपे॥
— प्र.मा.श., २१३, ७२; २३।

४ तस्याहं कल्पवृक्षस्य स्वरूपं वेद्मि नापरः।
प्रपञ्चबीजभूतस्य तद्वः सर्वं निरूपितम्॥
— प्र.मा.श., २१३, ७२; २४।

५ तस्मादेवं विधो वृक्षो नास्ति ब्रह्माण्डगोलके।
अतोऽर्चयन्त्यमुं देवा मनुष्याणां तु का कथा॥
— प्र.मा.श., २१३, ७२; २६।

६ तस्मान्मुनिवरा यूयमेनं पूजयताक्षयम्।
येऽन्येऽपि पूजयिष्यन्ति प्राप्स्यन्ते ते मनोगतम्॥
— प्र.मा.श., २१३, ७२; २७

अक्षय फल पाते हैं'।[१] 'सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा को जब सृष्टि बनाने की सामग्री नहीं मिली तो मनोकामना पूर्ण करने वाले इस अक्षयवट की उन्होंने पूजा की'।[२] 'तीनों लोकों को समेट कर आदि पुरुष इस पर सोता है'।

गया का अक्षयवट

गया का अक्षयवट भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध था।[४] महाभारत में इस के अनेक उल्लेख आते हैं।[५] काश्मीर के महा-

---

१ यात्रार्थमागता ये वै नरा नार्योऽमलाशयाः।
संपूज्य प्रार्थयन्त्येते लभन्ते फलमक्षयम्॥
— प्र.मा.श., २१४, ७२; २८।

२ सृष्टिकर्त्ता यदा ब्रह्मा न लेभे सृष्टिसाधनम्।
तदाक्षयवटं चैनं पूजयामास कामदम्॥
— प्र.मा.श., २१४, ७२; २९।

३ संशेते वै पुमानाद्यः संहृत्य भुवनत्रयम्।
पादांगुष्ठं करे धृत्वा पिबन्नास्त्यत्र बालकः॥
— प्र.मा.श., २१४, ७२; ३५।

४ ततो गयां समासाद्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
अश्वमेधमवाप्नोति गमनादेव भारत॥
तत्राक्षयवटो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।
पितृणां तत्र वै दत्तमक्षयं भवति प्रभो॥
महानद्यामुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः।
अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान् कुलं चैव समुद्धरेत्॥
— महाभारत, आरण्यक पर्व, ७२-७३।

५ एष्टव्या बहवः पुत्राः यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यत्रासौ प्रथितो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः॥
— म.भा., अनुशासन पर्व, अ.१३, ८८; १४।

कवि क्षेमेन्द्र (१०२०–१०८० ई.प.) ने गया के अक्षयवट का वर्णन किया है ।[१] वायुपुराण (आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज़, पूना, १९०५, पृ.४२६-४५३) के गया माहात्म्य में हमें वट के निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं— भस्मकूटाद्रि के पास 'वटो वटेश्वरः' (पृ.४३७), गृध्रकूट के पास 'गृध्रवट' (पृ.४३७), सीताद्रि के पास 'वटोवटेश्वरः' (पृ.४३८), गृध्रकूट के पास 'गृध्रेवट' (पृ.४३८) और भस्मकूट, गृध्रकूट, फल्गुतीर्थ आदि के साथ 'अक्षयवट' (पृ. ४४०) । गया के अक्षयवट के नीचे श्राद्ध करने के तथा विविध प्रकार के दान देने के फल की महिमा बताते हुए उस वट के अग्रभाग में योगशायी बालरूप-धर भगवान् की स्तुति की है ।[२]

पण्डों का चमत्कार

सैंकड़ों बरसों तक प्रयाग का अक्षयवट तीर्थपुरोहितों की जादूविद्या का चमत्कार मात्र रहा । अक्षयवट देखने के लिए

---

१ गङ्गोद्भवं त्रिनयनप्रियां वाराणसीं पुरीम् ।
तां चाक्षय्यवटोपेतां पितृसंतारिणीं गयाम् ॥
—भारतमञ्जरी, आरण्यक पर्व, ६५४-६५५ ।

२ कृते श्राद्धेऽक्षयवटे अन्नेनैव प्रयत्नतः ।
पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम् ॥
वटवृक्षसमीपे तु शाकेनाप्युदकेन वा ।
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवन्ति भोजिताः ॥
देयं दानं षोडषकं गयातीर्थपुरोधसे ।
वस्त्रं गन्धादिभिः पुत्रैः सम्यक् संपूज्य यत्नतः ॥
एकार्णवे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया ।
बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने ॥
— वायुपुराण, गयामाहात्म्य, पृ. ४४९ ।

इलाहाबाद के किले के भीतर जाना पड़ता था । यद्यपि किले के द्वार पर सन्तरी रहता था परन्तु अक्षयवट का मन्दिर और वहां तक जाने का मार्ग जनता के लिए खुला था । किले के द्वार से मन्दिर एक फर्लाङ्ग से भी कम दूरी पर है । मन्दिर भूमि के अन्दर है । उस की छत किले की भूमि के समतल में है । अन्दर प्रकाश जाने के लिए मन्दिर की छत में खुला स्थान छूटा है जिसे चारों ओर से घेर कर रोशनदान बनाया गया है । इस प्रकार मन्दिर में धीमा प्रकाश पहुंचता है । मन्दिर में उतरने के लिए सीढ़ियाँ हैं । कुछ पण्डे मन्दिर दिखाने का ही काम करते थे । वे दीपक जलाकर मूर्तियां और अक्षयवट अच्छी तरह दिखाते थे । भीतर बड़ा पुजारी अक्षयवट के पास बैठा रहता था । एक छोटा दीपक जलता रहता था । हाथ भर से कम व्यास का कुंदा वहां ज़मीन से निकला हुआ दिखाई पड़ता था जिस की दो शाखाएं हो कर छत से जा मिलती थीं । इसी को अक्षयवट कहते थे । इस के अधिक भाग को कपड़े से ढके रखते थे । लीडर समाचार-पत्र में तथा अन्य पत्रों में भी सन् १९५३ में बहुत वाद-विवाद छपा था जिस से एक बात प्रत्यक्ष हो गई थी कि जल चढ़ाते-चढ़ाते जब मन्दिर में रखा कुंदा सड़ने लगता था तो पुजारी रात के समय चुपके से सड़े कुंदे को निकाल कर उस के बदले दूसरा कुंदा रख देता था । प्रतिदिन नये आने वाले भक्तों और यात्रियों के सामने तो यह सचमुच उस अक्षयवट के रूप में प्रस्तुत किया जाता था जिस का नाश प्रलयकाल में भी नहीं होता । यदि कोई जिज्ञासु इस के छोटे आकार को देख कर विस्मय प्रकट करे तो पण्डे उस का सन्तोष यह कह कर करते थे कि चारों ओर से घिरा होने

के कारण इस को न धूप लग पाती है और न स्वस्थ हवा पर्याप्त मिलती है, इसी से इस की वृद्धि अत्यन्त मन्द है।

कुछ लोगों का यह कहना है कि असली अक्षयवट वह जीता-जागता वृक्ष है जो किले के मैदान में अन्यत्र खड़ा है। परन्तु, प्रतिद्वन्दियों का कहना है कि यह एक बहाना है जिस से पूजा पुराने स्थान से उठ कर नवीन स्थान में होने लगे और नवीन पुजारियों को पैसे मिलने लगें। यदि इसे वही श्याम-न्यग्रोध मान लिया जाय जिस के नीचे सीता ने अञ्जलि-बद्ध हो कर मंगल की याचना की थी तो सैंकड़ों वर्षों के समय में यह बहुत अधिक फैला हुआ होना चाहिए था। इस के वर्त-मान आकार-प्रकार को देख कर इसे ह्यु एन्त्सांग के समय (सातवीं शती ई.प.) का वह वृक्ष भी नहीं माना जा सकता जिस के ऊपर से हिन्दू लोग कूद कर प्राण-त्याग किया करते थे। जो लोग इसे अक्षयवट बताते हैं वे इस के छोटे रहने का कारण यह कहते हैं कि पहले जब यह खुली हवा में था तो नदी की बाढ़ों से धीरे-धीरे इस के चारों ओर मिट्टी का भराव होता गया और इस तरह नई बनी भूमि के ऊपर वृक्ष का बहुत थोड़ा भाग ही शेष रहा। यदि यह कथन भी स्वीकार कर लिया जाय तो मानना पड़ेगा कि किला बनने के बाद से इस पर और अधिक मिट्टी नहीं चढ़ी होगी। तब से अर्थात् लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों में यह दो हज़ार फ़ीट से अधिक परिधि का पेड़ बन जाना चाहिए था, क्योंकि कलकत्ते का बरगद लग-भग एक सौ सत्तर वर्षों में प्रायः नौ सौ फ़ीट की परिधि में बढ़ गया था।

संवत् २०१२ में श्री शीतलाप्रसाद मिश्र ने 'अक्षयवट' नामक

पुस्तिका प्रकाशित की है। इस में प्रयाग के अक्षयवट के सम्बन्ध में प्रचलित विश्वासों का वर्णन है। पिछले वर्षों प्रयाग के पत्रों में इस विषय को ले कर जो विवाद चला उस का उल्लेख भी इस में है। प्रयाग के कतिपय प्रतिष्ठित महानुभावों के प्रयत्न से पातालपुरी के तथाकथित अक्षयवट का इस विवाद में रहस्योद्घाटन हो गया है। पातालपुरी के कुन्दे को अक्षयवट न मानने वालों की विचारधारा इस प्रकार है।

सन् १५७५ में जब किले का निर्माण प्रारम्भ हुआ तो हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का आदर करते हुए लगभग सौ वर्ष पुरानी एक शाखा को छोड़ कर शेष वृक्ष कटवा डाला गया। यह वृक्ष किले के दक्षिणपूर्वी भाग में चारदिवारी में था। इस का कुछ भाग तो दीवार के अन्दर आ गया। शेष भाग ठूंठों के रूप में खड़ा रहा। दीवार में एक दरवाज़ा रख दिया गया जिस से सर्वसाधारण इस की पूजा सुविधापूर्वक करता रह सके। इस के निकट ही दीवार में एक दरवाज़ा है। प्रतीत होता है कि अकबर बादशाह ने सर्वसाधारण को इस की पूजा करने की सुविधा देने के लिए ही ऐसी व्यवस्था कर दी थी। इस में किले के अन्दर जनसाधारण का कुछ दखल नहीं था और जनता दर्शन कर के बाहर ही बाहर चली जाती थी। सम्भवतः कुछ काल तक जनता को इस की पूजा करने का अधिकार रहा। इस वृक्ष के समीप ही शाही महल अवस्थित थे और बादशाह जब प्रयाग में ठहरते थे तो वे इन्हीं महलों में निवास करते थे। अपने पिता के शासन के अन्तिम वर्षों में जहाँगीर प्रयाग के किले में लगभग पांच वर्ष रहे। शाही निवास स्थान के समीपवर्ती अक्षयवट तक जनता

के अबाध रूप में आने-जाने से अधिकारियों को असुविधा होती रही हो। इस लिए अकबर के शासनकाल में ही इस की पूजा बन्द कर दी गई।

इस प्रसङ्ग में शाह आलम द्वितीय द्वारा सन् १७७२ में दी गई एक सनद का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। राज्यारोहण के तेरहवें वर्ष में वह सनद लिखी गई थी। इस सनद में अयोध्यानाथ योगी को बादशाह अकबर द्वारा दी गई एक पुरानी सनद के आधार पर पातालपुरी में अक्षयवट पर उन के अधिकार की परिपुष्टी की गई है।

इस सनद से प्रकट होता है कि अकबर के शासन काल में ही हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं की रक्षा के लिए पातालपुरी मन्दिर में असली अक्षयवट की एक शाखा रोप दी गई थी और उस की पूजा होने लगी थी। जब वह सूख गई तो उस के स्थान पर नयी शाखा रोप दी गई। पुजारी उसे हरा-भरा और पल्लवित रखने में सफल नहीं रहे जिस से बार-बार शाखा बदलने का क्रम चालू रहा। अक्षयवट के इस प्रकार क्षीण होने की बात को पुजारी लोग जनता पर प्रकट करना अपनी निर्बलता समझते थे। इस से शाखा को बदलने की क्रिया वे एकान्त देख कर रात्रि के अन्धेरे में करते थे। तात्कालीन मुग़ल या अंग्रेज़ सैनिक अधिकारियों की अनुमति से यह बड़ी शाखा बदली जाती थी। अंग्रेज़ों ने इस पातालपुरी मन्दिर के रहस्य की पूर्णतया रक्षा की। तीसरे-चौथे साल जब यह शाखा सड़ जाती तो उसे बदलने का कार्य अंग्रेज़ सैनिकों के निरीक्षण में रात को चुपके से किया जाता। अंग्रेज़ों के भारत से चले जाने के बाद किला भारतीय सैनिकों के अधिकार में आ गया। भारतीय सैनिकों की

अनुमति से २० जून १९५१ को शाखा बदली गई। २४ जून १९५१ के दैनिक लीडर और भारत में इस घटना का समाचार इस प्रकार छपा — 'इलाहाबाद २३ जून। इलाहाबाद के किले में भूगर्भस्थ पातालपुरी मन्दिर में अक्षयवट के रूप में जिस पुराने तने की पूजा की जाती थी, उस के स्थान पर एक नई शाखा स्थापित की गई है। प्राप्त सूचना के अनुसार तथा जिस की पुष्टि सरकारी माध्यम द्वारा हो चुकी है, यह कहा गया है कि मन्दिर के प्रधान पुरोहित ने अधिकारियों से लिखित प्रार्थना की थी कि यह शाखा बहुत पुरानी हो गई है और इस के स्थान पर नई शाखा स्थापित करने की आज्ञा दी जाय। धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुंचाने के उद्देश्य से और पुजारियों के रिवाज़ न टूटने के विचार से उन्हें शाखा परिवर्तन की आज्ञा दे दी गई। छत्तीस पण्डों तथा बीस मज़दूरों ने उसी ढङ्ग की एक वृक्ष की शाखा ला कर उस स्थान पर स्थापित कर दी। यह कार्य अन्धेरी रात को आठ बजे सम्पन्न किया गया। इस अवसर पर पुरोहित ने किले के भीतर के व्यक्तियों को तथा त्रिवेणी तट के व्यक्तियों को प्रसाद वितरित किया।'

इस से यह तो स्पष्ट हो गया कि काण्ड को इसी प्रकार राजकीय अधिकारियों की अनुमति से दीर्घकाल से समय-समय पर बदला जाता रहा है।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद १८६० में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे एक बङ्गाली भोलानाथ चन्द्र ने जो तीर्थ-यात्राएं कीं उस का विवरण 'एक हिन्दू की यात्राएं' (१८६९ में प्रकाशित) नामक पुस्तक में है। उन के वृत्तान्त से पता चलता है कि पातालपुरी का मन्दिर भी कुछ वर्षों तक जनसाधारण के दर्शन के लिए

बन्द था और सैनिक अधिकारी उसे कोयला आदि भण्डारित करने के काम में लाते थे। वट का वृत्तान्त उन्होंने इस प्रकार दिया है — 'शुष्क दो नोक वाला वृक्ष[1] दिखलाई पड़ा, जिस का सूखा हुआ तना कई सौ वर्षों से वहां विराजमान है। यही अक्षयवट या अमरवट है, जिस में आज भी रस तथा जीवन-तत्त्व है।'

पातालपुरी मन्दिर सम्भवतः सन् १८४५ के लगभग जनता के लिए बन्द कर दिया गया और बाबू भोलानाथ चन्द्र के अनुसार लगभग १८६५ या १८६६ में खोल दिया गया।

पातालपुरी मन्दिर में किसी वट काण्ड की अक्षयवट के रूप में पूजा की सम्पुष्टि हमें अनेक यात्रियों के द्वारा मिलती है। एक डच धर्मप्रचारक टिफेन थालर १७६५ की फरवरी और सितम्बर में इलाहाबाद आये थे। भारत के भूगोल विषयक उन की जर्मन भाषा में लिखी पुस्तक का फ्रांसीसी में अनुवाद हुआ। वे बताते हैं कि इस की शाखाएं दो समान भागों में विभक्त हैं। इस में पत्तियां नहीं हैं, फिर भी इस में रस है और यदि चाकू से काटा जाता है तो इस में से एक प्रकार का दूध निकलता है।

जेम्स फ़ोर्ब्स ने १८ अगस्त १७८५ को इलाहाबाद का किला देखा। उन्होंने पातालपुरी मन्दिर में इस आश्चर्यमय वृक्ष को देखा था।

जनरल कनिंघम का पुरातत्त्व सम्बन्धी प्रतिवेदन (१८६५)

---

१ प्राचीन लेखकों ने असली अक्षयवट की दो बड़ी शाखाओं का वर्णन किया था जो गङ्गा और यमुना की धाराओं पर झुकी हुई थीं। इस के आधार पर पण्डे लोग भी दो शाखाओं वाला तना पूजा के लिए स्थापित करते थे।

बताता है कि 'यह छायाहीन वटवृक्ष आज भी प्रयाग में पूजा जाता है। यह वृक्ष आज भी पृथ्वी के भीतर एक ओर स्थित है या एक स्तम्भ के पास है।'

जॉन डॉसन सैण्डर्स्ट स्टॉफ़ कॉलेज में उच्च सैनिक अधिकारी थे। उन्होंने (१८६७) लिखा है कि वृक्ष की शाखा अब भी है और उसी प्रकार पवित्र है तथा इलाहाबाद के किले के भीतर पातालपुरी मन्दिर के समीप मन्दिर के घेरे में होने के कारण बाहर से दृष्टिगोचर नहीं होती।'

श्री जी.एच. खाण्डेकर (इण्डियन कम्पेनियन, पूना, सन् १८९४, पृष्ठ ९२१) ने १८९४ में पातालपुरी मन्दिर में अक्षयवट के ठूंठ की पूजा देखी थी।

प्रयाग के कुछ प्रतिष्ठित महानुभावों ने सन् १९५० में किले के अन्दर असली अक्षयवट की खोज आरम्भ की। किले के दक्षिण पूर्व कोने में उन्हें कूड़े-करकट के ढेर में दबे हुए वटवृक्ष के कुछ ठूंठ मिले। औद्भिदी (botany) में वृक्षों की आयु उन के वलयों (growth rings) की परिगणना कर के निश्चित की जाती है। इस पद्धति का आश्रय ले कर प्रयाग विश्वविद्यालय के औद्भिदी के प्राध्यापक ने किले के सैनिक अधिकारियों की प्रार्थना पर उन ठूंठों की परीक्षा की। उन की परीक्षा बताती है कि नये खोजे हुए अक्षयवट में मुकुट तथा ऊपर की शाखाओं को शक्ति देने के लिए खम्भे के रूप में उस की लम्बी जड़ें हैं। बहुत सी इन में ऊपर से गिरी हुई जड़ें हैं जैसा कि वटवृक्ष में होती हैं। इन में से वृक्ष की एक बड़ी मुख्य शाखा वर्तमान भूस्तर से छह फ़ीट की ऊंचाई पर काटी हुई प्रतीत होती है। ऊपर के चिन्हों से यह बहुत प्राचीन मालूम

होती है। चिन्ह के नीचे मुख्य तने में बहुत सी ऊपर से गिरी हुई जड़ें लिपटी हुई हैं और बहुत सी शाखायें इन से निकली हुई हैं। इस से यह प्रतीत स्पष्ट होता है कि इस की बहुत सी शाखाओं के तने काटे गये हैं।

मुख्य तने में चार सौ वार्षिक वलय चिन्ह हैं तथा मुख्य तने के शेष भाग में लगभग सौ वलय चिन्ह हैं। इस तरह मुख्य तने में लगभग पाँच सौ वलय चिन्ह हैं। पास की शाखाओं में इसी तरह के वार्षिक वलय चिन्ह दो सौ हैं। प्रत्येक वलय की चौड़ाई के अनुसार भी गणना की गई और उक्त वलय चिन्ह ठीक पाये गये। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष कटने के समय मुख्य शाखा लगभग पांच सौ वर्ष पुरानी थी। शाखाओं की स्थिति का ध्यान रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मुख्य तना २५० वर्ष पूर्व काट दिया गया हो।

जहांगीर जब किले में निवास कर रहा था तो उसे अक्षयवट के विषय में बतलाया गया था। उस समय वृक्ष की केवल एक शाखा थी। उस का कुतूहल बढ़ा। उस ने लोहे की एक बड़ी तवी बनवाई। वह वृक्ष काट डाला गया और उस पर लोहे की तवी रख कर आग जला दी गई। आग कई दिन जलती रही। कुछ समय के बाद जले हुए वृक्ष में से फिर नई शाखाएं फूटीं तो बादशाह चकित हो गया। इम्पीरियल गजेटियर में भी जहांगीर द्वारा अक्षयवट को जलाने की बात लिखी है। नये खोजे गये वृक्ष पर जलाये जाने के चिन्ह भी हैं।

मौत का पेड़

ह्यु एन्त्सांग (सातवीं शती ई.प.) के भ्रमण वृत्तान्त में प्रयाग का अक्षयवट मौत का पैग़ाम देने वाला पेड़ बन गया

है। इस के नीचे वह मनुष्यों की हड्डियों का ढेर देखता है। पेड़ के ऊपर से कूद कर जो लोग अपने प्राण विसर्जन करते थे उन की देहों को नरभक्षी राक्षस खा जाते और हड्डियों का ढेर वहां छोड़ देते थे। धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हो कर आत्म-घात करने के इरादे से लोग उस के ऊपर चढ़ जाते और अपने विश्वासों के आधार पर उन्हें दीखता कि 'स्वर्गीय ऋषि वायु-मण्डल में बाजे बजाते हुए हमें बुला रहे हैं।' ऐसे पुनीत स्थान से गिर कर प्राण त्यागना धन्य समझा जाता था। स्त्रियों की सती प्रथा से इस प्रथा की तुलना की जा सकती है। ह्यु एन्त्सांग के अनुसार वट से कूद कर प्राणोत्सर्ग करने की यह प्रथा बहुत पहले से प्रचलित थी।[1] शब्दरत्नावली में वट का एक नाम यमप्रिय भी मिलता है।

ह्यु एन्त्सांग के कथन का समर्थन हमें पौराणिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिल जाता है।

'प्रयाग माहात्म्य शताध्यायी' में कहा है कि मरने के बाद जो अपनी उत्कृष्ट गति चाहता है उसे इस वट के नीचे स्वेच्छा से या अनिच्छा से शीघ्र ही प्राण त्याग देने चाहिएं।[2]

कूर्म पुराण[3] के अनुसार इस वट मूल के नीचे प्राण त्यागने

---

१ ह्यु एन्त्सांग का भ्रमण वृत्तान्त, पृ. २४६-२५०। इण्डियन प्रेस, सन् १९२६।

२ अकामो वा सकामो वा वटमूले मुनीश्वरः।
शीघ्रं प्राणान् प्रमुच्येत यदीच्छते परमां गतिम्॥
—प्र.मा.श., पूर्वार्द्ध, ११०, ३७; १६।

३ वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
स्वर्गलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ —कू.पु.,१,३७;८-९।

वाले स्वर्गलोक से भी ऊपर रुद्रलोक में जाते हैं। पद्म पुराण[1] और मत्स्य पुराण[2] ने भी इसी मान्यता का समर्थन किया है।

आत्मबोधन का साधन

छान्दोग्योपनिषद् के एक संवाद में श्वेतकेतु को आत्मज्ञान देते हुए आरुणि बतलाते हैं कि जिस प्रकार न्यग्रोध-फल के एक बीज के अन्दर महान् वृक्ष विद्यमान है किन्तु वह दीखता नहीं उसी तरह प्रकृति में परमात्मा व्याप्त है।[3] यह भाव अन्य उपनिषदों में भी इस प्रकार आया है—वट-बीज में जैसे महान् वृक्ष प्रतिष्ठित है उसी तरह जगत् का कारण अग्नि और सोम का रूप राम-बीज में प्रतिष्ठित है।[4] रामपूर्वतापिन्युपनिषद् में

---

१ पद्म पुराण, आदि खण्ड, ४३; ११ में भी यह श्लोक ज़रा से पाठ भेद से आया है। इस में स्वर्गलोकान् के स्थान पर सर्वलोकान् पाठ है।

२ वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥
— मत्स्य पुराण, अध्याय १०४; १०।

३ न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति। भिन्धीति। भिन्नं भगव इति। किमत्र पश्यसीति ? अण्व्य इवेमा धाना भगव इति। आसामङ्गैकां भिन्धीति। भिन्ना भगव इति। किमत्र पश्यसीति ? न किंचन भगव इति॥ १॥ तं होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एव महान् न्यग्रोधस्तिष्ठति। श्रद्धत्स्व सोम्येति॥ २॥ —छान्दोग्यो., प्रपा. ६, ख. १२; १-२।

४ अग्निषोमात्मकंरूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम्।
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान्द्रुमः॥
— रामरहस्योपनिषद्, ५; ६।

चराचर जगत् वटबीजस्थ महान् द्रुम की तरह रामबीज में स्थित बताया गया है ।[१] दत्तात्रेय उपनिषद् वटबीज में स्थित वृक्ष की तरह सारे जगत् को दत्तात्रेय में अवस्थित बताती है ।[२] सर्वसारोपनिषद् में कहा गया है कि जिस प्रकार वट-कणिकाओं में वृक्ष विद्यमान होता है उसी तरह इन चारों कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय) में आनन्दमय कोश रहता है । आत्मतत्त्व के रहस्य का उद्घाटन करने वाली उप-निषदों में इसी प्रकार वटवृक्ष का अनेक स्थलों पर दृष्टान्त दिया गया है ।

काव्यों में

वनस्पतियों में न्यग्रोध क्षत्रिय जाति का वृक्ष है । इस की तुलना राजा से की जाती है । राजा जैसे अपनी राजधानी में स्थिर रहता हुआ भी सारे राष्ट्र में घूमता रहता है उसी प्रकार न्यग्रोध भी यद्यपि एक स्थान पर स्थिर है परन्तु अपने अवरोहों से निरन्तर फैलता चला जाता है ।[४]

---

१ कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजःसत्त्वतमो गुणैः ।
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान्द्रुमः ॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।
— रामपूर्वतापिन्युपनिषद्, २; २ ।

२ वटबीजस्थमिव दत्तबीजस्थं सर्वं जगत् । — दत्तात्रेयोपनिषद्,१;२ ।

३ एतत्कोशचतुष्टयं संसक्तं स्वकारणाज्ञाने वटकणिकायामिव वृक्षो यदावर्तते तदानन्दमयः कोश इत्युच्यते ।
— सर्वसारोपनिषद्, १; १७ ।

४ क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः क्षत्रं राजन्यो वितत इव हीह क्षत्रियो राष्ट्रे वसन्भवति प्रतिष्ठित इव वितत इव न्यग्रोधोऽव-रोहैर्भूम्यां प्रतिष्ठित इव । — ऐ.ब्रा., अ.३५, ख.५; ३१ ।

रावण को सुग्रीव के सचिवों का बल दिखाते हुए शुक ने बताया है कि गङ्गा के तट पर पैदा हुए न्यग्रोध वृक्षों की तरह वे स्थिर हैं।[१] कालिदास (३८०–४१३ ई.प.) ने भी वसिष्ठ आदि बूढ़े मन्त्रियों के चेहरे पर बढ़ी हुई दाढ़ियों की तुलना बरगद की जटाओं से की है। दाढ़ियों में बालों के गुच्छे आपस में लिपट कर बरगद की दाढ़ियों की तरह चेहरों पर लटक रहे हैं।[२]

राजा भोज ने विश्व कि एक न्यग्रोध से तुलना की है। वे कहते हैं कि घने श्यामल पत्तों वाले व्योम रूपी न्यग्रोध वृक्ष की नीचे आती हुई जटाएं, मानो वर्षा की धाराएं पृथ्वी पर आ लगी हैं।[3]

संस्कृत-साहित्य के प्राचीन कवियों ने इसे अतिशय शोभावान् वृक्ष की तरह वर्णन किया है। श्री हर्ष (१२वीं शती) के नैषध में पुष्करद्वीप का सौन्दर्य तो बरगद ही है जिस की शाखाओं और पत्तों का बड़ा छत्र आकाश से गिरते वाली धूप आदि से द्वीप को बचाता है। इतना बड़ा छाता अपने भार को अपने अवरोहों से स्वयं उठा रहा है। इस के पके हुए लाल फलों की और नीले पत्तों की रक्त-नील द्युति से वह द्वीप जग-

---

१ न्यग्रोधानिव गाङ्गेयान्। — रामा., युद्धकाण्ड ६, सर्ग २६; २।

२ श्मश्रुप्रवृद्धिजनितानन विक्रियांश्च।
प्लक्षप्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्॥
— रघुवंश, सर्ग १३, ७१।

३ घनश्यामलपत्रस्य व्योमन्न्यग्रोधशाखिनः।
प्ररोहा इव लक्ष्यन्ते वारिधारा धरांगताः॥
—चम्पू.रामा., कि.का. २६।

मगा रहा था।[१]

हमारे देश की अन्य भाषाओं में भी वट की बड़ाई पर बहुत कविताएं लिखी गई हैं। नर्मदा का वट गुजरात के अनेक कवियों का प्रिय विषय रहा है। शान्त एकान्त द्वीप में खड़े उस महाकाय वट से इन कवियों ने शिव जी की तपश्चर्या का गान किया है। बरगद की जटाएं शिव जी की जटाओं से कितनी अधिक मिलती हैं!

योरोप के अनेक कवियों की प्रतिभा को बरगद की महानता, भव्यता और पवित्रता ने उद्बुद्ध किया है। मिल्टन की ये पंक्तियाँ देखिए —

So counselled he, and both together went
Into the thikest wood; there soon they choose
Thc fig-tree, not that kind for fruit renown'd;
But such as at this day, to Indians Known,
In Malabar or Deccan spreads her arms,
Branching so broad and long, that in the ground
The bended twigs take roots, and daughters grow
About the mother tree, a pillar'd shade
High over-arch'd, and echoing walks between.[2]

---

१ न्यग्रोधनाविव दिवः पतदातपादेर्न्यग्रोधमात्मभरधारमिवावरोहैः।
तं तस्य पाकिफलनली दलद्युतिभ्यां द्वीपस्य पश्य शिखिपत्रजमातपत्रम्॥
— नैषध., ११; ३०।

2 Paradise Lost, IX. 1101.

बार्टन ने संकेत किया है कि ये पंक्तियां लिखते हुए मिल्टन (१६६७) को जिरार्ड (Gerard) के वटवृक्ष का वर्णन अवश्य ध्यान में होगा।

विलियम्सन की 'प्राच्य क्षेत्र मृगया' (ओरियेण्टल फ़ील्ड स्पोर्ट्स, २, ११३) के विवरण के आधार पर लिखी साउदी (१८१०) की एक कविता इस प्रकार है —

In the midst an aged Banian grew.
It was a goodly sight to see
That venerable tree,
For over the lawn, irrigularly spread,
Fifty straight columns propt its lofty head;
And many a long depending shoot,
Seeking to strike its roots;
Straight like a plummet grew towards the ground
Some on the lower baughs which crost their way,
Fixing their bearded fibres, round and round
With many a ring and wild contortion wound;
Some to the passing wind at times with sway
Of gentle motion swung;
Others of younger growth, unmoved, were hung
Like stone-drops from tne cavern's fretted height[1]

विनाशकारी वृक्ष पवित्रा क्यों ?

पररोही उपज का वटवृक्ष एक विशिष्ट उदाहरण है । पुरानी दीवारों तथा वृक्षों पर पक्षियों द्वारा गिराये बीजों से सामान्यतया वृक्ष उद्भूत होता है । दून के जङ्गलों में प्रतीत होता है कि वट के पररोहण के लिए हल्दू अतिशय प्रिय पोषिता (होस्ट) है । किसी पक्षी द्वारा निकाला गया बीज पहले किसी पेड़ पर टिकता है और यहीं पर जम कर लम्बी जड़ें प्रकट हो

---

1 Southey (1810) Curse of Kehama, xiii, 51.

जाती हैं जो शीघ्र ही मोटी तथा मज़बूत हो जाती हैं और अन्त में अपने आश्रय-पादप का दम घोट देती हैं। दूसरों का विनाश कर के जीने वाला पेड़ भला पवित्र क्यों होगा ? शीतल छाया तथा सुखद आश्रय देना और असंख्य कीड़ों, पक्षियों, पशुओं तथा प्राणियों को प्रचुर भोजन प्रदान करना — सम्भवतः ऐसे उपकारी कार्यों के कारण ही यह वृक्ष हिन्दू-धर्म में पवित्र माना जाता है।

बहुत से धार्मिक अनुष्ठानों का इस वृक्ष के साथ सम्बन्ध है। इस के नीचे दीक्षा दी जाती है।[1] प्राचीन काल में गुरु-जन अपने शिष्यों के साथ वटवृक्ष के नीचे ही डेरा डाल कर रहते थे।[2] इस विश्वास से इस को सींचा जाता है कि शाखा-प्रशाखाओं से जिस तरह यह खूब बढ़ जाता है उसी तरह पुत्र-पौत्रों से यह हमारी सदा वृद्धि करता रहेगा।[3] धर्मग्रन्थों में इस के पास श्मशान बनाने का निषेध किया गया है।[4] मनु

---

१ वटवृक्षाधो दीक्षा भवति।

—बृ.१, उ.२, प्रक. (राजेन्द्राभिधान में उद्धृत)।

२ वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

३ वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।
यथा शाखाप्रशाखाभिः प्रवृद्धोऽसि महीतले।
तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च प्रवृद्धां कुरु मां सदा॥

—जयसिंह कल्पद्रुम।

४क न भूमिपाशमभिविद्ध्यात्। ··· न न्यग्रोधस्य ···॥

—शतपथ.१३, ८, २; १६।

ख आरात्पथः॥ न्यग्रोधाश्वत्थतिल्वकहरिद्रुस्फूर्जकबिभीदकपाप-नामभ्यश्च॥ —कात्यायन श्रौतसौत्र, अ.२१, कं.३; १९-२०।

महाराज (२०० ई.पू.) ने क्षत्रिय को बरगद की लाठी रखने का आदेश दिया है।[१] राज्याभिषेक में राजा का तीसरा अभिषेचन न्यग्रोध की जटा के बने पात्र से राजा का क्षत्रिय मित्र करता था। सूखी शाखाएँ पवित्र समझी जाती हैं और यज्ञाग्नि में समिधाओं के रूप में काम आती हैं। सुजाता ने तपस्वी सिद्धार्थ को बरगद का देवता समझ कर खीर दान की थी। बुद्धवंश के अनुसार गौतम बुद्ध से पहले जो बीसवें बुद्ध हुए थे उन का बोधिवृक्ष बरगद था। बरगद के नीचे तप करते हुए उन्होंने ज्ञान पाया था। उस समय यह पवित्र माना जाता था और इस की पूजा होती थी।

आयु, आरोग्य, सौभाग्य, सम्पत्ति और सन्तति की कामना से जो नारी वटसावित्री का व्रत रखती है अथवा इन की सिद्धि के लिए उद्यापन करती है उसे यथेष्ट फल मिलता है।[3] इस की पूजा करने से स्त्रियों का सुहाग बढ़ता है; पुत्रों, पौत्रों और

---

१ ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
पैलवोदुम्बरौ वैश्यः दण्डानर्हेत् यथा क्रमम्॥

— मनु।

२ नैयग्रोधपादं भवति। तेन मित्र्यो राजन्योभिषिञ्चति पद्भिर्वै-न्यग्रोधः प्रतिष्ठितो मित्रेण वै राजन्यः प्रतिष्ठितस्तस्मान्नैयग्रोध-पादेन मित्र्यो राजन्योऽभिषिञ्चति। — श.ब्रा., ५,३,५-१३।

३ आयुरारोग्यसौभाग्यसंपत्सन्ततिकाम्यया।
या नारी वटसावित्री व्रतमत्र करिष्यति॥
गृहीत तत्र सिद्ध्यर्थमुद्यापनयथापि वा।
यथाशक्ति यथावित्तं सा तत्फलमवाप्स्यति॥

— प्र.मा.श., २१४, ७२; ४६-४७।

प्रपौत्रों से उन के कुल की वृद्धि होती है।[1] सन्तान और सब प्रकार की सम्पत्ति को बढ़ाता है।[2]

पद्मपुराण के अनुसार वट रुद्र का रूप है।[3] श्री हर्ष (१२ वीं शती) ने न्यग्रोधमण्डल की हिमशीतल छाया तले साक्षात् ब्रह्मा का आवास बताया है।

१८५६ में लिखी एक अंग्रेज़ी कविता में बरगद के पेड़ की एक महान् गिरजाघर से तुलना की है जो अनेक वीथियों और पक्षों से संयुक्त है।[5] बरगद के ऐसे सुन्दर कुञ्ज की छाया तले पहुंचने पर हेवर (१८२५) के मन पर जो पहला असर पड़ा था वह यह है—

---

१ पुत्रपौत्रप्रपौत्राश्च कुलवृद्धिः प्रजायते।
सौभाग्यं लभते नारी पूजनाज्जन्मजन्मनि ॥
—प्र.मा.श., २१४, ७२; ३२।

२ यान्यानभीप्सते कामांस्तान्सर्वान् प्रददात्यसौ।
सन्तानवर्धनं चापि सर्वसंपत्करोति च ॥
—प्र.मा.श., २१४, ७२; ३४।

३ रुद्ररूपो वटस्तद्वत् ....
दर्शनस्पर्शन सेवासु ते वै पापहराः स्मृताः।
दुःखापद्व्याधिदुष्टानां विनाशकारिणी ध्रुवम्।
—पद्मोत्तर खण्ड, अ.१६०।

४ देवः वसति तत्र किल स्वयम्भूः न्यग्रोधमण्डल तले हिमशीतले यः।
— नैषधीय चरित, स.११; २९।

5 ....its pendent branches, rooting in the air,
Yearn to the parent earth and grappling fast,
Grow up huge stems again, which shooting forth
In massy branches, these again dispatch
Their drooping heralds, till a labyrinth
Of root and stem and branch commingling, forms

'पूजा के लिए कितना भला स्थान ।' कवि साउदी[1] (१७७४-१८४३) के शुद्ध अन्तःकरण की प्रथम प्रेरणा भी यही थी कि देवालय सरीखे इस महावृक्ष के तले प्रार्थना करने में कितना आनन्द होगा ।

पद्म पुराण के अनुसार व्रजमण्डल के अन्तर्गत ये सोलह वट वन हैं — १. संकेत वट, २ भाण्डीर, ३. पावक, ४. शृङ्गार, ५. वंशिवट, ६. श्रीवट, ७. जटाजूट, ८. कामाख्य, ९. मनोऽर्थ वटक, १०. आशा वट, ११. अशोकाख्य, १२. केलिवट, १३. ब्राह्मण वट, १४. रुद्रवट, १५. श्रीधराख्य, १६. सावित्राख्य । व्रज में भक्ति रखने वाले इन्हें शुभदायक मानते हैं ।[2]

A great cathedral, aisled and choired in wood.'
— Hobson-Jobson, p. 66-67.

1 So like a temple did it seem that there
A pious heart's first impulse would be prayer.

२ संकेत वटमादौ तु भाण्डीराख्यं वटं द्वयम् ।
पावकाख्यं तृतीयं च वटं शृङ्गारसंज्ञकं ।।
तुर्यं वंशिवटं श्रेष्ठं पञ्चमं श्रीवटञ्च षट् ।
सप्तमं च जटाजूटं कामाख्यवटमष्टकं ।।
मनोऽर्थवटकं नाम नवमं परिकीर्तितम् ।
आशावटं महाश्रेष्ठं दशमं शुभदायकम् ।।
अशोकाख्यं वटं श्रेष्ठमेकादशमुदाहृतम् ।
नाम केलिवटं श्रेष्ठं द्वादशं परिकीर्तितम् ।।
नाम ब्रह्मवटञ्चैव त्रयोदशमसंज्ञकम् ।
नाम रुद्रवटं श्रेष्ठं चतुर्दशमुदाहृतम् ।।
श्रीधराख्यं वटं ख्यातं पञ्चदशसमीरितम् ।
सावित्राख्यं वटं श्रेष्ठं संख्या षोडशनिर्मितम् ।।
— नारायण भट्ट कृत व्रजभक्तिविलास ।

मकानों का बड़ा शत्रु

बरगद और पीपल दोनों ही मकानों को बहुत हानि पहुंचाते हैं। Ld. Valentia (१८०९) ने बरगद को मकानों का सब से बड़ा शत्रु लिखा है। पक्षियों द्वारा गिराये गये बीज जहां-तहां छतों और दीवारों पर जम आते हैं। बाल पौदों की जड़ें ईंटों या पत्थरों की चिनाई के बीच में से अपना मार्ग बनाती हैं। जड़ों का पाश इतना दृढ़ होता है कि उस से छुटकारा पाना लगभग असम्भव होता है। अन्त में ये मकान को तहस-नहस कर डालती हैं। कालिदास (सातवीं शती) ने देखा था कि ये महलों के तल तक को भेद डालती हैं।[१] बरगद का संस्कृत में सब से प्रसिद्ध नाम वट है। यह शब्द जड़ों के इस गुण को सम्यक्तया सूचित करता है। इस का अर्थ है 'वह वृक्ष जो अपनी जड़ों से दूसरों को अच्छी तरह लपेट ले (वटति वेष्टयति मूलेन इति वटः)।'

हिन्दुओं के धार्मिक विश्वास ऐसे अवाञ्छनीय स्थितियों में भी उगे हुए पौदों को नष्ट करने से रोकते हैं। पवित्र होने से वे इसे कभी नहीं काटेंगे। गैम्बल (१९०२) आदि वन के अधिकारी बताते हैं कि धार्मिक भावनाओं के कारण अनेक वार बरगद के पेड़ कटवाने के लिए श्रमिक मिलने कठिन हो जाते हैं। मद्रास एञ्जीनियर्स के थौमस मार्स्डेन (१७७१) ने अपने संस्मरणों में एक अजीब आपबीती लिखी है — 'त्रिपलासोर (बाद में इसे Marsden's Bastion कहते थे) के किले पर एक सैनिक कार्य का निर्माण करने के लिए मैं नियुक्त था। बरगद के एक पेड़ को कटवाना आवश्यक हुआ। वहाँ के ब्राह्मण

---

१ तस्य प्रसह्य हृदयं किलशोकशंकुः। प्लक्षप्ररोह इव सौधतलंबिभेद॥
— रघुवंश, सर्ग ८।

इस से इतने उत्तेजित हो गए कि उन्होंने मुझे विष देने की ठान ली ।' इस प्रकार इस इञ्जीनियर को अकाल में ही मौत की झांकी मिल गई ।

गैम्बल (१६०२) आदि विद्वानों ने जङ्गलों में से इस का सफाया करने के लिए यह युक्ति दी है कि जङ्गलों में यह व्यर्थ ही बहुत सी जगह घेरे रहता है और लकड़ी की दृष्टि से यह व्यापारिक महत्त्व का पेड़ नहीं है, इसलिए इसे काट गिराना चाहिए और अधिक मूल्यवान् वृक्षों को उस जगह पर पनपने का अवसर देना चाहिए ।

तने के बिना भी बढ़ रहा है

ताड़ और खजूर के वृक्षों पर लिपटे हुए बरगद तथा पीपल के पेड़ प्राय: दीख पड़ते हैं । इस का कारण यह है कि इन के पत्तों के आधार पर एक प्राकृतिक प्याला-सा बन जाता है जिस में बीज को टिकने और उगने में अनुकूलता होती है । अन्ततोगत्वा ये आश्रयदाता को पूर्णतया आबद्ध कर लेते हैं और अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेते हैं। कलकत्ता की राजकीय वनस्पति वाटिका में संसार के सब से महान् बट वृक्षों में से जो बरगद है उस के सम्बन्ध में भी श्री फाल्कोनर (Falconer) ने निर्णीत किया था कि वह भी इसी तरह एक खजूर के वृक्ष पर पड़ने से सन् १७८२ में उद्भूत हुआ था । फाल्कोनर ने १८३४ में, हूकर ने १८४७ में तथा बैल्फ़ूर ने १८६३ में इस की परीक्षा की थी और इस के नाप आदि लिए थे । १८६३ में इस का फैलाव तीन सौ फ़ीट और ऊंचाई अस्सी फ़ीट थी । १८६४ और १८६७ के अन्धड़ों में इस ने बहुत क्षति उठाई । बाद में इस ने क्षतिपूर्ति कर ली । १८८६ में इस का फैलाव

८५७ फ़ीट हो गया था और इस के तने की गोलाई बयालीस फ़ीट थी। १६०० के नवम्बर में डॉक्टर प्रेन ने इस के नाप ये बताये थे — उत्तर-दक्षिण में २८८ फ़ीट, पूर्व-पश्चिम में ३०० फ़ीट, तने की परिधि इकावन फ़ीट, मुकुट की परिधि ६३८ फ़ीट, ऊंचाई ८५ फ़ीट, जटाओं के तनों की संख्या ४६४। इस का केन्द्रीय मूल-तना अब मर चुका है। मुख्य तने के बिना ही यह अब भी केन्द्र से बाहर की ओर फैल रहा है। इस से प्रतीत होता है कि जटा के ज़मीन में गड़ जाने के बाद प्रत्येक बड़ी शाखा और उस की जटा मिल कर एक स्वतन्त्र वृक्ष बन जाते हैं जिन्हें अपने जनक स्कन्ध से पोषण लेने की विशेष आवश्यकता नहीं।

कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि एक ही वृक्ष के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न समयों में फूलते हैं और पर्ण उत्पन्न करते हैं। इस तथ्य से यह माना जाना चाहिए कि सैंकड़ों जटाओं वाला सम्पूर्ण वृक्ष एक ही पौदे से उद्भूत नहीं है, अपितु रोपण (grafting) से मिलती-जुलती एक प्राकृतिक प्रक्रिया द्वारा अलग-अलग पौदे मिल कर एक साथ उग रहे हैं।

बीस हज़ार लोगों का घर

कलकत्ते वाले वृक्ष से भी बड़े वटवृक्ष भूतकाल में अनेक स्थानों पर विद्यमान थे। १८८२ में सतारा के बरगद के बारे में श्री वार्नर ने लिखा था कि यह वृक्ष कलकत्ते के वटवृक्ष से कहीं बड़ा है। इस की परिधि १५८७ फ़ीट थी। मुख्य तने से उत्तर-दक्षिण में यह ५६५ फ़ीट तथा पूर्व-पश्चिम में ४४२ फ़ीट तक चला गया था।

आन्ध्र घाटी में एक प्रसिद्ध वृक्ष दो हज़ार फ़ीट की परिधि

में फैला हुआ था जिस के तीन हज़ार से अधिक तनें या वायव्य मूलें थीं। इस की छाया के नीचे बीस हज़ार लोग आश्रय ले सकते थे। हमारे देश के दसियों गांवों की आबादी को मिलाने से यह बड़ी संख्या बनती है। पुराकाल में जङ्गलों के अन्दर रहने वाली यक्ष, गन्धर्व आदि जातियां वास्तव में वटवृक्षों को घर बना कर रहती थीं।[१] सिद्ध पुरुष इन की शीतल छाया में निवास करते थे और राहगीर अक्सर इस के नीचे पड़ाव डाल लिया करते थे।[२]

सामरिक कार्यों के लिए

बेन जोनसन (१६२४) ने अपनी कविता में सारे वृक्ष को ऐंसी डचोढ़ी के सदृश समझा है जो कई सेनाओं की छावनी बन सकता है।[३]

एक सेना के प्रयाण के समय कबीर के बरगद ने सात हज़ार

---

१ एते वै गन्धर्वाप्सरसां गृहाः। —शत., १, ५, ४, १।

२ ततो न्यग्रोधमासाद्य महान्तं हरितच्छदम्।
परीतं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्॥
तस्मिन्सीताञ्जलिं कृत्वा प्रयुञ्जीताशिषां क्रियाम्।
समासाद्य च तं वृक्षं वसेद्वातिक्रमेद् वा॥
—रामायण, अयोध्या काण्ड २, सर्ग ५५; ६–७।

3 '. . . The goodly bole being got
To certain cubits' height, from every side
The boughs decline, which, taking root afresh,
Spring up new boles, and these spring new and newer,
Till the whole tree become a porticus,
Or arched arbour able to receive
A numorous troop.'
— Ben Jonson, Neptune's Triumph.

आदमियों को आश्रय दिया भी था। सामरिक कार्यों के लिए न्यग्रोध का उपयोग करने के अन्य उदाहरण भी मिलते हैं। युद्ध क्षेत्र में श्रान्त वीरों के विश्राम करने के लिए न्यग्रोध वृक्ष उचित आश्रय समझा जाता था। घायल हो जाने पर दुर्योधन को न्यग्रोध के नीचे ले गये थे, जिस से तालाब के कमलों को हिंडोले देने वाली सुगन्धित शीतल-समीर से मन्द-मन्द हिलते हुए बरगद के कोमल तथा घने पत्तों की छाया में मूर्च्छा दूर हो जाय। सीता को ढूंढने के लिए हनुमान जब अशोक वाटिका में गये तो वे श्रीकृष्ण की तरह न्यग्रोध के पत्तों में छिप गये थे।[२] यजुर्वेद के अश्वमेध प्रकरण में अश्व की न्यग्रोध से रक्षा करने का विधान मिलता है।[३] निश्चय ही थके-मांदे घोड़े के लिये न्यग्रोध की छाया श्रमहर का कार्य करती होगी।

तीन हज़ार तनों वाला बरगद

नर्मदा का बरगद भी ऐतिहासिक संस्मरणों का वृक्ष बन गया है। विदेशी पर्यटकों के लिए यह बड़े कुतूहल की चीज़ थी। अठारहवीं शताब्दी के यूरोपियन उस के नीचे समूचा दिन बिताने में आनन्द मानते थे। हमारे देश में रहने वाले यूरोपियन शासक उन्नीसवीं शताब्दी में भी उस की शीतल छाया,

---

१ अये, अयमसौ सरसीसरोजविलोलनसुरभिशीतलमातरिश्वसंवाहितसान्द्रकिसलयो न्यग्रोधपादपः। उचिता विश्रामभूमिरियं समरव्यापारखिन्नस्य वीरजनस्य। — वेणीसंहार, अङ्क ४।

२ तत्र तत्पत्रसंच्छन्नगात्रः पुत्रो नभस्वतः।
न्यग्रोधदलसंलीनः जनार्दनदशां दधौ॥
— चम्पूरामा., सु., कां.; १६।

३ न्यग्रोधश्चमसैः (अवतु) — यजु., अ.२३; १३।

विशालता और भव्यता का निमन्त्रण स्वीकार करते थे और अपने आमोद-प्रमोद के समयों में वहां जाते थे। बीसवीं सदी के आरम्भ की इंग्लिश रीडरों में इस महान् वट पर एक पाठ था। भड़ोंच से कोई बारह मील उत्तर-पूर्व में नर्मदा के एक द्वीप में यह खड़ा था। अप्रैल १८२५ में हेबर नामक पादरी ने इसे संसार के सब से बड़े कुञ्जों में गिना था, यद्यपि तब यह बहुत-कुछ बहाया जा चुका था। सन् १८३४ में फ़ोर्ब्स ने अपने 'प्राच्य संस्मरणों' (ओरिएण्टल मेमौयर्स, दूसरा संस्करण, १; १६) में इस का निर्देश किया है। वे लिखते हैं — 'इस असाधारण वृक्ष के बड़े भाग को ऊंची बाढ़ों ने बहा दिया है। परन्तु, अब भी जो कुछ वहां विद्यमान है वह परिधि में दो हज़ार फ़ीट के आस-पास है। मुख्य तने के चारों ओर की दूरी का यह नाप है। ··· इस के नीचे शरीफे तथा दूसरे फलों के अनेक वृक्ष उगे हुए हैं। इस एक ही पेड़ के बड़े तने तीन सौ पचास हैं और छोटे तनों की संख्या तीन हज़ार से ऊपर पहुंचती है।' फ़ोर्ब्स का यह वर्णन क्षतविक्षत वृक्ष का है। जब यह पूर्ण अवस्था में होगा तो कल्पना कीजिए कि आन्ध्र-घाटी के बरगद से कितना विस्तृत होगा और कितने लोगों तथा पशु-पक्षियों को आश्रय और भोजन देता होगा।

१९०८ (दि इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया, जिल्द ९, १९०८, पृष्ठ १९) में इस की यह ख्याति नहीं रही थी, यह नष्ट हो चुका था।

कबीर की दातुन से उद्भूत

नर्मदा के बरगद के बारे में फ़ोर्ब्स ने कहा था कि एक प्राचीन हिन्दू सन्त के नाम से यह प्रसिद्ध है। P.della Valle

(Hak. Soc.i.35) ने १६२३ में इस बरगद का बड़ा रोचक और विस्तृत वर्णन किया है और श्री ग्रे ने इसी को कबीर का बरगद बतलाया है। कोपलैण्ड ने १८१८ में (Tr.Lit.Soc.Bo. i.290) हिन्दुओं में प्रसिद्ध इस लोकवार्त्ता का ज़िक्र किया है कि महात्मा कबीर ने एक दिन दांत साफ़ कर के दातुन को ज़मीन में गाड़ दिया। अकस्मात् वह जड़ पकड़ गई और इस विशाल रूप को धारण कर गई। १६७२ में फ्रायर के उल्लेख से पता चलता है कि सूरत के बरगद की बाकायदा पूजा होती थी। १७२६ में इस के नीचे एक मन्दिर खड़ा था जो किसी बनिये ने बनवाया था। Valentijn (१७२६) ने देखा था कि 'दिन-रात वहां जोतें जगती हैं और इस देव को अर्घ्य समर्पण करने के लिए बनियों की धार्मिक टोलियां निरन्तर आती रहती हैं।'

अनन्त विस्तार

वनस्पति-जगत् में पर्ण की सब से बड़ी मूर्धा वास्तव में भारतीय वटवृक्ष बनाता है। इतना विशाल और विस्तृत वृक्ष अपनी भारी भरकम शाखाओं के बोझ को कैसे सम्हाले ? प्रकृति ने इस का प्रबन्ध बड़ा सुन्दर किया है। शाखा जब बड़ी हो जाती है तो उस में एक वायव्य जड़ लटक पड़ती है जो नीचे की ओर बढ़ती हुई ज़मीन में धंस जाती है। शाखा के बोझ को सम्हालने में यह अब एक खम्भे का काम करती है। इन जटाओं (वायव्यों मूलों) से बने खम्भों का एक घेरा मूल तने के चारों ओर बन जाता है। शाखा जब और आगे बढ़ती है और अपना भार सम्हालने में अपने को असमर्थ पाती है तो फिर वायव्य जड़ छोड़ देती है जो पहले की तरह धरती तक पहुंच जाती

है । इस प्रकार खम्भों के एक नये घेरे की सृष्टि हो जाती है । धरती में पहुंची हुई जटाएं, मुख्य तने से बहुत दूर चली गई शाखाओं को सीधा पोषण देना शुरू कर देती हैं । दीर्घ और भीमकाय सैंकड़ों शाखाओं को मुख्य तना स्वयं ठीक तरह पोषण पहुंचाने में असमर्थ था, इसलिए यह नया प्रबन्ध बड़ा सन्तोष-जनक रहता है । शाखाओं के बढ़ने और जटाएँ छोड़ने का क्रम कभी समाप्त नहीं होता । इस प्रकार यह वृक्ष अपना असीमित विस्तार करता जाता है । इसीलिए बरगद अनन्तता का प्रतीक समझा जाता है ।

बनियों का वृक्ष

पर्शिया के समुद्र तट पर ओरमुज (Ormuz) शहर के पास गौम्ब्रून में १६२३ में P.della Valle (हैक़लुएट सोसा-इटी, १, ३५) ने एक बरगद देखा था । पर्शियन लोग इसे लूल कहते थे । टैवर्नीर (१६५०) के अनुसार उस द्वीप में बरगद का एक ही पेड़ उग रहा था । Valentijn (१६९१) जब इसे देखने गया था तो उस के साथ बनियों ने एक देवालय खड़ा कर लिया था जिस में प्रतिष्ठित मूर्ति की वे पूजा किया करते थे । व्यापार के लिए देशाटन करने वाले हिन्दू बनियों का यह अड्डा बन गया था । बनियों का निवास होने से पर्शिया की खाड़ी में उगे हुए इस वटवृक्ष को लोग 'बनियों का वृक्ष' कहने लगे । तभी से अंग्रेज़ी साहित्य में बरगद के लिए सामान्य नाम 'बनि-यन ट्री' पड़ गया । इस से पहले के साहित्य में हमें यह नाम नहीं मिलता । प्लीनी (७० ई.प.) ने बरगद को 'भारतीय ओदुम्बर वृक्ष' (इण्डियन फ़िग ट्री) नाम दिया है ।

पर्शिया की खाड़ी वाला 'बनियों का वृक्ष' १७५८ में भी

आंग्ल-कारखाने के पास आधा मील के अन्दर ही खड़ा था। एडवर्ड आइव्स (ए वॉयेज फ्रॉम इङ्गलैण्ड टु इण्डिया इन दि इयर १७५४–१७७३) ने उसे देखा था। इङ्गलैण्ड की एक महिला टिकेल (१७१७) द्वारा लिखित और एविग्नोन को भेजी यह कविता उस ने उद्धृत की थी —

The fair descendents of thy sacred
Wide-branching o'er the Western World shall
    spread,
Like the fam'd Banian Tree, whose pliant shoot
To earthward bending of itself takes root,
Till like their mother plant ten thousand stand
In verdant arches on the fertile land;
Beneath her shade the tawny Indians rove,
Or hunt at large through the wide-echoing grove.

भेद

रामायण में बरगद के विभिन्न नामों के लिए चार शब्द आये हैं — न्यग्रोध, श्यामन्यग्रोध, वट और भाण्डीर। प्रयाग में कालिन्दी के पास जो बरगद था उसे वाल्मीकि ने 'श्यामन्यग्रोध' लिखा है।[1] पम्पा के किनारे जो बरगद थे उन के लिए रामायण में वट और भाण्डीर नाम मिलते हैं।[2] चरक में भाण्डीर शब्द नहीं आया है। सह्य पर्वत पर बरगद के जिन वृक्षों पर बन्दर आनन्द मनाते थे उन का केवल न्यग्रोध नाम से ही उल्लेख

१ देखें : रामायण, अयोध्या काण्ड २, सर्ग ५५; ६ और २३।
२ देखें : रामायण, अरण्य काण्ड ३, सर्ग ७५; २३।

हुआ है ।[१] मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवल छन्द की सुविधा के लिए नहीं अपितु जानबूझ कर अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया गया है और वाल्मीकि ऋषि बरगद के ये चार भेद स्पष्ट रूप से जानते थे। बाद के संस्कृत लेखकों ने इन भेदों को एक दूसरे के साथ मिला दिया था और यहां तक कि वट तथा न्यग्रोध शब्द को पर्यायवाची नाम समझने लगे थे। वनस्पति-शास्त्र के आधुनिक विद्वानों ने बरगद के कई स्पष्ट भेदों का पता लगाया है। सब से मुख्य भेद जटाओं का है। कुछ में जटाएं बहुत कम होती हैं या होती ही नहीं। चरक के टीकाकार चक्रपाणिदत्त के अनुसार इस भेद को वट कहना चाहिए और जटाओं वाले बरगद को न्यग्रोध ।[२]

पत्तों में भी कुछ भिन्नताएं हैं। एक सुन्दर भेद के नये पत्ते आरक्त (reddish) होते हैं और वसन्त में जब अभिनव पर्ण प्रकट होते हैं तो वृक्ष को सुन्दर ताम्रवर्ण में परिवर्तित कर देते हैं।

नदीवट

नाम — नरहरि पण्डित (१२३५–५० ई.प.) ने बरगद का एक भेद नदीवट लिखा है। संस्कृत में इस के आठ नाम

---

१ अशोकांश्च करञ्जांश्च प्लक्षन्यग्रोधपादपान् ।
जम्बुकामलकान्नागान्भजन्ति स्म प्लवङ्गमाः ॥
—रामायण, युद्धकाण्ड ६, सर्ग ४; ७२ ।

२ चरक, चिकित्सा स्थान, अध्याय ३, श्लोक २५८ की चक्रपाणिदत्त की टीका इस प्रकार है — निष्प्ररोहो वटः न्यग्रोधस्तु प्ररोहवान् ।

इस प्रकार हैं[1]—नदीवट (नदियों के किनारे होने वाला बरगद); वटक, वटी (छोटा बरगद); क्षीर काष्ठा (जिस की लकड़ी में दूध निकलता है); सिद्धार्थ (सिद्ध लोगों द्वारा चाहा जाने वाला); अमरा (जो कभी मरता न हो); सङ्गिनी (दूसरों के साथ उग आने वाला); यज्ञवृक्ष (यज्ञ में काम आने वाला वृक्ष)।

कृष्णवट

बरगद (फ़ाइकस बंगालेन्सिस) का एक असाधारण प्रकार कृष्णवट है। वनस्पति-शास्त्र के आधुनिक विद्वानों ने जिसे कृष्ण-वट या कृष्णन्यग्रोध माना है वह पत्तों के रंग-भेद के कारण नहीं अपितु रचना भेद के कारण माना है। कलकत्ते के बगीचों में यह कदाचित् मिल जाता है। हरिद्वार के आस-पास नहीं मिलता। वन अनुसन्धान-शाला, देहरादून की वाटिका में इस के वृक्ष विद्यमान हैं। इस भेद में आधार के पास पत्ते नीचे की ओर घूम जाते हैं जिस से दोने के आकार की या प्याली-नुमा रचना बन जाती है। संस्कृत में इस रचना को पुट कहते हैं। भागवत् (नवीं शती ई.प.) तथा दूसरे मध्यकालीन साहित्य में वट के इसी पुट में श्रीकृष्ण के सोने की कल्पना की है।[2] इसी से इस भेद का नाम कृष्णवट पड़ गया था। इस सम्बन्ध

---

१ नदीवटो यज्ञवृक्षः सिद्धार्थो वटको वटी।
अमरा सङ्गिनी चैव क्षीरकाष्ठा च कीर्तिता॥

—रा.नि., आम्रादि., ११; ११६।

२क तस्मिन् पृथिव्यां ककुदिप्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटेशयानम्।
तोकं च सप्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन॥

—भागवत्, स्कन्ध १२।

में दूसरी प्रचलित आख्यायिका के अनुसार भगवान् कृष्ण ने इन पत्तों को प्याले का रूप दे दिया था जिस से पीने के काम आ सकें। सन् १९०१ में डि कैण्डोल ने इस वृक्ष को पृथक् जाति वर्णन किया था और श्रीकृष्ण के नाम पर ही इस का वैज्ञानिक नाम फ़ाइकस कृष्णी (Ficus Krishnae C.de C.) अर्थात् कृष्णवट रखा था। परन्तु १९३५ (करेण्ट साइन्स, जि.३, सं. ९, मार्च १९३५) में कलकत्ते के राजकीय वनस्पति-उद्यान के अधीक्षक डॉ. के. विश्वास ने दिखाया था कि यह वृक्ष बरगद (फ़ाइकस बंगालेन्सिस) के एक भेद के सिवाय पृथक् जाति नहीं है।

रासायनिक संघटन

फल के एक सूखे नमूने का संघटन यह है —

जल	११.४ प्रतिशतक
श्वित्याभ (एल्ब्युमिनौयड्स)	७.१ प्रतिशतक
तेल	४.० प्रतिशतक
प्रांगोदीय (कार्बोहाइड्रेट्स)	३५.२ प्रतिशतक
रेशे	३६.८ प्रतिशतक
राख	५.५ प्रतिशतक

कलकत्ते में इकट्ठा किये गये ताज़े फलों के एक नमूने को अंशतः सुखा कर विश्लेषण किया गया। इस का संघटन यह था —

जल	१२.९ प्रतिशतक

ख करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि॥

श्वित्याभ	८.१[1] प्रतिशतक
तेल	६.१ प्रतिशतक
प्रांगोदीय	३५.५[2] प्रतिशतक
रेशे	३१.० प्रतिशतक
राख	६.४[3] प्रतिशतक

सुषविक निस्सार (एल्कॉहलिक एक्स्ट्रैक्ट) में एक मधु-मेय (ग्लूकोसाइड) और अत्यल्प अम्ल होते हैं परन्तु शल्कि (टैनीन) या क्षाराभ (एल्कलॉयड) का पर्याप्त परिमाण नहीं होता। गहरे नीलारुण (purple) क्षारीय घोल से आरक्त बभ्रु (reddish brown) निक्षेप के रूप में रंजक पदार्थ निक्षिप्त हो जाता है जो सूख कर प्रायः काला चूर्ण बन जाता है।

हूपर (१९०६–१९०७) ने आक्षीर (latex) की फुट्टियों (clots) में ७६ तथा ८२ प्रतिशतक उद्यास (resin) और शुद्ध घृषि (caoutchouc) केवल १२ और २१ प्रतिशतक पाई।

गुण[4]

आयुर्वेद के विद्वानों के अनुसार वट शीतल, रूक्ष, कसैला,

---

१ इस में नत्रजन १.३१ प्रतिशतक थी।

२ इस में रंजक पदार्थ ७.७ प्रतिशतक था।

३ इस में सैकजा (सिलिका) ०.३५ और प्रस्फुरक अम्ल ०.५३ प्रतिशतक थे।

४क वटः शीतः कषायश्च स्तम्भनो रूक्षणात्मकः।
तथा तृष्णाच्छर्दिमूर्च्छारक्तपित्तविनाशनः॥
—ध.नि., आम्रादि.५; ७७।

मीठा, भारी, ग्राही, स्तम्भक, क़फपित्तहर; योनि के विकारों को दूर करने वाला, रङ्ग निखारने वाला; ज्वर, दाह, उलटियां आना, बार-बार प्यास लगना, बेहोशी, खून बहना आदि कष्टों को हरने वाला; विसर्प, ज़ख़्म और शोथ को ठीक करने वाला है।

नदी वट के गुण — छोटा बरगद या नदीवट कसैला, मीठा, ठण्डा, पित्त को हरने वाला, प्यास तथा दाह को शान्त करने वाला, थकान उतारने वाला, उलटियां, दस्त और सांस के कष्टों को हटाने वाला है।[1]

यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान में बरगद पहले दर्जे में शीत और दूसरे दर्जे में खुश्क है। बरगद का दूध तीसरे दर्जे में शीत एवं रूक्ष है।

ख वटः कषायो मधुरः शिशिरः कफपित्तजित्।
ज्वरदाहतृषामोहव्रणशोथापहारकः॥
— रा.नि., आम्रादि. ११; ११५।

ग वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः॥
— म.पा.नि., वटादि. ५; २।

घ वटो रूक्षो हिमो ग्राही कषायो योनिदोषजित्।
वर्ण्यो व्रणविसर्पघ्नः कफपित्तहरो गुरुः॥
— कै.दे.नि., ओ.व.; ३८८।

ङ वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः।
वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत्॥
— भा.प्र., वटादि. २।

१ वटी कषायमधुरा शिशिरा पित्तहारिणी।
दाहतृष्णाश्रमश्वासविट्छर्दिशमनी परा॥
— रा.नि., आम्रादि. ११; ११७।

राजाओं का भोजन

नये अंकुर, कोमल पत्ते और फल अकाल के दिनों में कहीं-कहीं खाये जाते हैं। पुराकाल में फल और जटाओं के कोमल अंकुर राजाओं और क्षत्रियों का भोजन था। क्षात्र गुणों का आधान करने के उद्देश्य से सोमरूप में इन का सेवन किया जाता था। यह समझा जाता था कि 'यज्ञ करता हुआ जो क्षत्रिय न्यग्रोध के अवरोहों तथा फलों को खाता है वह वनस्पतियों में से क्षत्रत्व को अपने में स्थापित कर रहा होता है। जैसे न्यग्रोध अपने अवरोधों द्वारा भूमि में प्रतिष्ठित रहता है वैसे ही राजा राष्ट्र में प्रतिष्ठित रहता है। उस का राष्ट्र तेजस्वी बनता है। उस राष्ट्र में कोई गड़बड़ी नहीं कर सकता।'[1] 'जो क्षत्रिय न्यग्रोध के अवरोहों को और फलों को खाता है वह अपना उचित भोज्य खा रहा होता है। न्यग्रोध के रूप में वह सोम-पान कर रहा होता है।'[2]

उपयोग

पत्तों से पत्तलें बनती हैं। शाखाएं और पत्ते ढोरों के लिए अच्छा चारा हैं। हाथी का उपयोगी भोजन होने से कुछ स्थानों

---

१ तद्यत्क्षत्रियो यजमानो न्यग्रोधस्यावरोधांश्च फलानि च भक्षयत्यात्मन्येव तत्क्षत्रं वनस्पतीनां प्रतिष्ठापयति क्षत्र आत्मानम्। क्षत्रे ह वै स आत्मनि क्षत्रं वनस्पतीनां प्रतिष्ठापयति न्यग्रोध इवावरोधैर्भूम्यां प्रति राष्ट्रे तिष्ठत्युग्रं हास्य राष्ट्रमव्यथ्यं भवति य एवमेतं भक्षं भक्षयति क्षत्रियो यजमानः॥ — ऐ.ब्रा., अ.३५, ख.५; ३१।

२ एष ह वाव क्षत्रियः स्वाद्भक्षान्नैति यो न्यग्रोधस्यावरोधांश्च फलानि च भक्षयत्युपाह परोक्षेणैव सोमपीथमाप्नोति नास्य प्रत्यक्षं भक्षितो भवति परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः परोक्षमिवैष ब्रह्मणो रूपमुपनिगच्छति यत्क्षत्रियः पुरोधयैव दीक्षयैव प्रवरेणैव। — ऐ.ब्रा., अ.३५, ख.५; ३१।

पर इसे काटना मना है। कहा जाता है कि बरगद के लाल फल घोड़ों के लिए विषैले होते हैं।

छाल से और लटकने वाली बाल जड़ों से स्थूल तन्तु प्राप्त किया जाता है जो मन्दमाचिसों में और रज्जु-निर्माण में काम आता है। आसामी लोग छाल से एक प्रकार का कागज़ तैयार करते हैं।

बरगद के दूध में चौथाई भाग सरसों का तेल मिला कर पकाने से एक चिपचिपा लेस बन जाता है जिसे चिड़ीमार पक्षियों को पकड़ने के काम में लाते हैं। घटिया क़िस्म के रबर बनाने में दूध का प्रयोग होता है।

बरगद पर से कभी-कभी लाख इकट्ठी की जाती है। वैदिक काल में यह लाख का अच्छा स्रोत रहा होगा क्योंकि अथर्ववेद के एक मन्त्र में लाख पैदा करने वाले पिलखन, पीपल, खैर आदि वृक्षों के साथ इसे भी गिनाया है।[१]

मुख्य तने की लकड़ी रन्ध्री (porus), धूसर (grey), मामूली कठोर और पानी के अन्दर टिकाऊ है। कूप निर्माण में यह काम आती है। साधारण उपस्कर (फ़र्नीचर), मंजूषाओं, झोपड़ियों के द्वारों, द्वारपट्टों, मूसलों, शकट डण्डों, जूओं आदि में भी इसे बरत लेते हैं। सावधानी से काटा और संशोषण (season) किया जाय तो इस के वयन (grain) अच्छे बनते हैं। तब इस के बनाये उपस्कर बुरे नहीं रहते। पर्याप्त

---

१ भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठस्यश्वत्थात्खदिराद्धवात्।
भद्रान्न्यग्रोधात्पर्णात्सा न एह्यरुन्धति॥
— अथर्व., का. ५, सू. ५; ५।

टिकाऊ न होने से इस की अधिक मांग नहीं है। प्रतिघन फ़ुट का भार लगभग सैंतीस पौण्ड होता है।

जटाओं की तथा जटाओं से बने तनों की लकड़ी मुख्य तने की लकड़ी की तुलना में अधिक कठोर है। वायव्य टेकनें, तम्बुओं की टेकनों के लिए, पालकियों और बेंहगियों के डंडों के लिए, गाड़ी के जूओं के लिए, हाथ के डण्डों के लिए और छतरियों के हत्थों के लिए विशेष रूप से पसन्द की जाती हैं। विशिष्ट समारोहों के लिए बनाये जाने वाले छत्रों के हत्थों के लिए जटाएँ विशेष रूप से अच्छी मानी जाती हैं।

चिकित्सा में उपयोग

भारतीय चिकित्सक बरगद का किस तरह उपयोग करते हैं, यह आगे बतलाया गया है। मलय में यह वृक्ष अधिक नहीं होता; इसलिए भारत की तरह वहां इस के चिकित्सोपयोग ज्ञात नहीं हैं।

गर्भ के लिए हितकर

रजस्वला होने पर बरगद की जटा को पीस कर पुष्य नक्षत्र के शुक्ल पक्ष में खा लिया जाय तो बांझ औरत को भी गर्भ ठहर जाता है।[१] पुंसवन कर्म में गर्भवती स्त्री को बरगद का सेवन कराने की विधि चरक ने यह बताई है — गौओं के बाड़े में पैदा हुए बरगद की पूर्व और उत्तर की शाखाओं से दो उत्तम अंकुर ले कर उड़द के दो बढ़िया दानों या सफ़ेद सरसों के दानों के साथ दही में डाल कर पुष्य नक्षत्र में पिलाएं।[२] जिन्हें गर्भ-

---

१ गर्भदं वटशुङ्गन्तु पिबेत्वन्ध्या रजस्वला।
वारिणे शुक्लपक्षे हि पुष्येण च समाहृतम्॥ — शोढल।

२ तस्मादापन्नगर्भांस्त्रियमभिवीक्ष्य प्राग्व्यक्तिभावाद् गर्भस्य पुंसवन-

पात की आशङ्का रहती है वे बरगद की छाल, कोंपल या जटा को पानी में घोट कर पी लें तो लाभ होगा ।[1] गर्भिणी को चौथे महीने यदि खून आता दिखाई दे तो चरक ने बताया है कि कोमल बिछौने पर लिटा कर बरगद आदि के खूब ठंडे काढ़े से उसे नाभि के नीचे सब जगह परिषेक करना चाहिए । बरगद आदि के नव-पल्लवों से पकाये हुए दूध या घी में तर फोये को योनि में धारण करना चाहिए और इन्हीं को छह माशे से तोला भर तक खिलाना चाहिए । पथ्य में बरगद के अंकुरों को बकरी के दूध के साथ पिला देना चाहिए । ऐसा करने से गर्भ ठहर जाता है ।[2] कोंपलों के काढ़े में दूध और मीठा मिला कर गर्भस्थापक ओषधि के रूप में दिया जाता है । गर्भपात की सम्भावना प्रतीत होने पर झट दे देने से बड़ा लाभ करता है ।

प्रदर

छाल या कोंपलों का काढ़ा ग्राही तथा शीतल है और रक्त प्रदर आदि में दिया जाता है । इस में दूध मिला कर और चीनी से मीठा कर के भी दे सकते हैं । बरगद की जटा के काढ़े और

मस्यै दद्यात् । गोष्ठे जातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तराभ्यां शाखाभ्यां शुंगे अनुपहते आदाय द्वाभ्यां धान्यमाषाभ्यां संपदुपेताभ्यां गौरसर्षपाभ्यां वा सह दध्नि प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत् । —च, शा.८; १९ ।

१ यथा लाभं न्यग्रोधादित्वक् प्रवालवल्कलं वा पयसा पायेत् ।

२ पुष्पदर्शनादेवैनां ब्रूयात् — शयनं तावन्मृदुसुखशिशिरास्तरण-संस्तीर्णमीषदवनतशिरस्कं प्रतिपद्यस्वेति । · · · न्यग्रोधादि कषायेण वा परिषेचयेदधोनाभेः · · · न्यग्रोधादि शुंगासिद्धयोर्वा क्षीरसर्पिषोः पिचुं ग्राहयेत्, अतश्चैवाक्षमात्रं प्राशमेत् · · · न्यग्रोधशुंगानि वा पाययेदेनामाजेन पयसा · · · तथाऽस्या गर्भस्तिष्ठति ।
—च., शा.८; २४ ।

कल्क में पकाये घी को रक्तप्रदर में पिलाना श्रेष्ठ होता है ।[१] श्वेतप्रदर में बरगद की छाल के काढ़े के साथ लोध का कल्क पीना चाहिए ।[२] छाल का काढ़ा जिस में दस प्रतिशत टैनीन (शल्कि) होता है, श्वेतप्रदर में संकोचक प्रक्षालन द्रव के रूप में बरतने से लाभ होता है ।

बरगद की जटा के लेप करने से स्तन कठोर होते हैं ।

पेट के रोग

बरगद के कोंपलों को या जटा को चावलों के माण्ड से पीस कर लस्सी के साथ पी जाएं तो दस्तों के कष्ट से छुटकारा मिल जाता है ।[3] हाथी के अर्नीमा में बरगद और पीपल का प्रयोग अधिक होता है ।[४] शल्कि (टैनीन) की बड़ी प्रतिशतकता के कारण बालकलिकाओं का फाण्ट अतिसार और प्रवाहिका (पेचिश) में उपयोगी है ।

बरगद की जटाओं के कोमल सिरे दारुण वमन में उपयोगी हैं ।

प्यास, दाह

नये ठीकरे को अथवा काली मिट्टी या रेत को तपा कर लाल कर लें । वट-अंकुरों के पानी में इसे डाल कर बुझा लें ।

---

१ काश्मर्यवटशुंगानि पृथक् दन्त्यास्तथैव च ।
घृतं सिद्धं भवेत् श्रेष्ठं शोणितप्रदरे पिबेत् ।। — बं.से.सं. ।

२ न्यग्रोधत्वक् कषायेण लोध्रकल्कं तथा पिबेत् ।
—च., चि.३०; ११८ ।

३ वटरोहन्तु सम्पिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा ।
तत् पिबेत्तक्रसंयुक्तमतिसाररुजापहम् ।। — चक्र. ।

४ गजेऽधिकाश्वत्थवटाश्वकर्णकाः • • • । —च., सि.११; २४ ।

ठण्डा हो जाने पर पैत्तिक तृष्णा (प्यास) में पिलाया जाता है ।[1] बरगद की जड़ के निर्यूह में घी डाल कर ज्वर की जलन की शान्ति के लिए पिलाना चाहिए ।[2]

बरगद के पत्ते जब पीले पड़ जाते हैं तो उन को भूने हुए चावलों के साथ पका कर काढ़ा बना लेते हैं । बुखार उतारने के लिए इसे पिलाया जाता है ।

खांसी

बरगद के गीले अंकुरों को समान भाग मैनसिल के साथ पीस कर घी मिला लें । खांसी वाले जिस रोगी के ज़ख्मों में छाती में दलने की तरह पीड़ा होती है उसे इस का धूम्रपान करना चाहिए ।[3] कोमल पत्तों में श्लेष्मा को नष्ट करने का गुण होता है ।

शोधन के उपद्रव

शोधन कर्म में वमन विरेचन के अतियोग से पैदा होने वाले

---

१ वट ... ... ।
सिद्धेम्भस्यग्निनिभां कृष्णमृदं कृष्णसिकतां वा ।।
तप्तानि नवकपालान्यथवा निर्वाप्य पाययेताच्छम् ।
... ... तृषां हन्ति ।।
— च., चि.२२; ४४-४५ ।

२ जीवन्तीमूलनिर्यूहः सघृतो दाहजूर्तिजित् ।
तद्वन्न्यग्रोधपादस्य ... ... ।। — वैद्यमनोरमा ।

३ निवृत्ते क्षतदोषे तु कफवृद्ध उरःक्षते ।
दाल्यते कासिनो यस्य स धूमान्ना पिबेदिमान् ।।
पिष्ट्वा मनःसिलां तुल्यामार्द्रया वटशुंगया ।
ससर्पिष्कं पिबेद् धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ।।
— च., चि.१८; १४४, १४७ ।

विकारों को दूर करने के लिए वट आदि क्षीरी वृक्षों के नवीन पत्रांकुरों से तैयार की गई पेया को शहद मिला कर देना चाहिए और मल-संग्राहक औषधियों से पकाया दूध तथा अन्य भोजन देना चाहिए ।[1] पित्त विकार वाले को यदि बहुत अम्ल या गरम या तेज़ नमक वाला अनीमा दे दिया गया है तो वह गुदामार्ग में क्षोभ तथा सोज पैदा करता है और अन्य उपद्रव उत्पन्न करता है । गुदा से अनेक रङ्गों का खून और पित्त आने लगता है और रोगी इस कष्ट से मूर्च्छित भी हो जाया करता है । ऐसे रोगी की चिकित्सा चरक बताते हैं कि बरगद आदि के गीले पत्तों को कुचल कर घी में पका लें । इसे बकरी के दूध में मिला कर ठण्डा कर लें । इस का अनीमा दें ।[2]

बवासीर में बरगद के दूध को बताशे में रख कर खिलाते हैं ।

---

१ शुंगाभिर्वा वटादीनां सिद्धां पेयां समाक्षिकाम् ।
वर्चः सांग्राहिकैः सिद्धं क्षीरं भोज्यं च दापयेत् ॥

— च., सि.६; ५० ।

२ पित्तरोगेऽम्ल उष्णो वा तीक्ष्णो वा लवणोऽथवा ।
वस्तिर्लिखति पायुं तु क्षिणोति विदहत्यपि ॥
सविदग्धः स्रवत्यस्रं पित्तं चानेकवर्णवत् ।
सार्यते बहुवेगेन मोहं गच्छति चासकृत् ॥
आर्द्रशाल्मलि वृन्तैस्तु क्षुण्णैराजं पयः शृतम् ।
सर्पिषा योजितं शीतं बस्तिमस्मै प्रदापयेत् ॥
वटादिपल्लवेष्वेव कल्पो ... ... ।
... ... शस्यते ॥

— च., सि.७; ६१ ।

मूत्र और वीर्य के रोग

चरक के मूत्र-संग्रहणीय महाकषाय (सू., अ.४) में और कषाय स्कन्ध (वि., अ.८) में तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि गण (सू., अ.३८) में बरगद पढ़ा गया है। बहुमूत्र में छाल का काढ़ा और मधुमेह में फल दिये जाते हैं। फल शीतल, ग्राही और मूत्ररोधक हैं। जटा-क्वाथ प्रमेह में दिया जाता है। मधुमेह की चिकित्सा में छाल का फाण्ट शक्तिशाली बल्य औषध समझा जाता है। रुधिर स्थित शर्करा को कम करने में इस का कहते हैं कि विशेष प्रभाव है। सर्वश्री एम.एल. गुजराल, एन. के. चौधरी और आर.एस. श्रीवास्तव (दि इण्डियन मेडिकल गज़ट, मार्च १९५४) ने अपने परीक्षणों में जामुन के बीज, बरगद, गूलर-छाल, पीपल-छाल और नीम के अभिनव पत्तों का रस खरगोशों पर प्रयोग किया है। इन अन्वेषकों ने यह पाया है कि खरगोशों पर इन में से किसी भी औषध का प्रभाव नहीं है।

कोंपलों और जटाओं को सुखा कर उस से बनाये चूर्ण को शुक्रमेह में खिलाते हैं। अफीम, जायफल आदि को बरगद के दूध से घोट कर वीर्य-स्तम्भन के लिये गोलियां बनाते हैं। दूध की चार-पांच बूंदें बताशे में टपका कर स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि वीर्य-विकारों में देते हैं। छाल भी स्तम्भक मानी जाती है।

पञ्जाब में पूयमेह के लिये जटाओं के तन्तुओं का उपयोग होता है और ये सार्सापरीला के समान कार्य करने वाले समझे जाते हैं।

गठिया

सूखे पत्ते स्वेदजनक हैं। वेदनाओं तथा सोजों पर इन के

काढ़े से पसीना लाने के लिये धोना चाहिये । जटा के काढ़े को गठिया (वातरक्त) में पिलाते हैं । दूध वेदनाहर समझा जाता है । आमवात (र्ह्यूमेटिज्म) में, कमर तथा जोड़ों के दर्दों में तथा अन्य वेदनाओं में वटक्षीर का स्थानीय लेप किया जाता है ।

फोड़े-ज़ख्म

बरगद का क्षीर वेदनास्थापन और व्रणरोपण है । हाथ-पांव के तलों का फटना और शोथ पर, विशेषकर वंक्षणशोथ पर वटक्षीर का लेप करते हैं । पैर की दुखती बिवाइयों में इसे भरते हैं । विद्रधियों और फोड़ों पर पत्तों को सेक कर अकेला या पुल्टिस के साथ बांधते हैं । बरगद के अंकुरों के काढ़े से ज़ख्मों को धो कर और उन्हीं को पीस कर लेप करने से सोज उतरती है ।[1] अथर्ववेद में यह प्रबल कृमिनाशक माना गया गया है ।[2] ज़ख्म में कीड़े इतने पैदा हो गये हों कि उन का जाल सा बिछा हुआ दीखता हो, तो सुबह, दुपहर और रात को बरगद का दूध लगाना चाहिये ।[3] बरगद के कोपलों आदि का

---

१ ... ... न्यग्रोधपल्लवाः ।
न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टं ... ... ॥
आलेपनं निर्वपणं तद् विद्यात्तैश्च सेचनम् ।
—च., चि. २५; ६३-६४ ।

२ यत्राश्वत्था न्यग्रोधा महावृक्षाः शिखण्डिनः ।
तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥
—अथर्व., कां.४, सू. ३७; ४ ।

३ दुग्धन्यग्रोधवृक्षोद्भवमपि निहितं जन्तुजालं व्रणेषु ।
प्रातर्मध्यगतेऽर्के दिवसपरिणतौ चाप्तशास्त्रोक्तमेतत् ॥
—वैद्यमनोरमा ।

घी के साथ लेप, व्रण की शिथिलता और सुकुमारता को दूर करता है।[1] कर्नल चोपड़ा के अनुसार वटदुग्ध क्षतों और व्रणों पर उपयोगी संकोचक का काम करता है।

विसर्प

विसर्प में शरीर की अन्दर से शुद्धि हो जाने पर भी जिन रोगियों में त्वचा और मांस में विकार विद्यमान हों उन के लिये अथवा पहले से ही जो अल्प विकार वाले रोगी हैं उन के लिये बाहरी चिकित्सा के रूप में यह लेप बहुत अच्छा रहता है— बरगद की कोमल जटा, केले के तने का अन्दर का मृदु भाग और भिस को हज़ार बार धोये हुए घी में पीस कर बनाया हुआ लेप।[2] बरगद के पत्तों को पीस कर घी के साथ लेप करना भी अच्छा रहता है।[3]

कुष्ठ

बाल पर्ण कुष्ठ के लिये अच्छे समझे जाते हैं। कुष्ठ और रोमक बढ़ कर चाहे हड्डी तक भी पहुंच गये हों, सात रात बरगद के दूध का लेप करने और उस पर बरगद की छाल का

---

१ ··· न्यग्रोध शुंगानि ···।
प्रलेपो व्रणशैथिल्यसौकुमार्यप्रसाधनः॥ — च., चि.२५; ११०।

२ अन्तः शरीरे संशुद्धे दोषे त्वक्मांससंश्रिते।
आदितो वाऽल्पदोषाणां क्रिया बाह्या प्रवक्ष्यते॥
न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः।
बिसग्रन्थिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः॥
— च., चि.२१; ७१, ७३।

३ न्यग्रोधपत्र ··· सघृतं स्यात् प्रलेपनम्।
— च., चि.२१; ८३।

कल्क बांधने से शान्त हो जाते हैं।[1] जटा के बाल तन्तुओं का काढ़ा बना कर सारिवा के साथ रक्त दोषों के निवारण के लिये दिया जाता है।

खून बहना

खून बहने (रक्तपित्त) में बरगद का चन्दन के साथ प्रयोग हितकर होता है।[2] बरगद के पत्तों को रगड़ कर शहद से चटाया जाता है।[3] कोमल पत्तों या छाल के काढ़े को खून को रोकने के लिये पिलाते हैं। विशेष करके गुदा से बहते हुए खून (रक्तपित्त) में जटाओं या कोंपलों के साथ पकाया हुआ दूध देना लाभदायक होता है।[4] रक्तपित्ती को कब्ज़ रहता हो तो बरगद के काढ़े में मुर्गे का मांस पका कर देना चाहिये।[5] छोटी शाखाओं का फाण्ट नक्सीर (haemoptysis) में उपयोगी है। विषैला जीव जब काट खाये और खून निकालने की प्रक्रियाओं में अधिक खून बह निकले तब बरगद आदि के शीतल लेप कर के रोकना चाहिये।[6]

---

१ वटदुग्ध कुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य कल्केन।
अध्यस्थिसप्तरात्रान्महदपि शमयेत् सिद्धमिदम्॥
— बंगसेन, अर्बुद चि.।

२ ... ... न्यग्रोध ... ...।
पृथक्-पृथक् चन्दनयोजितानि तेनैव कल्पेन हितानि तत्र॥
— च., चि.४; ७५-७६।

३ लिह्याच्च दूर्वावटजांश्च पल्लवान् मधुद्वितीयान्। — सु., चि.४८।

४ विशेषतो विट्पथसंप्रवृत्ते पयो मतं ...।
वटावरोहैर्वटशुंगकैर्वा ... ...॥ — च., चि.४; ८६।

५ मयूरःप्लक्षनिर्यूहे न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः। — च., चि.४; ५०।

६ घर्षणमतिप्रवृत्ते वटादिभिः शीतलैर्लेपः। — च., चि.२३; ४१।

सर्प-विष

मण्डली सांपों (vipers) के विष में बरगद की कोंपलों को रगड़ कर चरक पिलाते हैं।[१] कायस् और म्हस्कर (इण्डियन मेडिकल रिसर्च मेमौयर्स, नं.१६, जनवरी १६३१) के परीक्षणों के अनुसार बरगद फनियर (दर्वीकर) और दबोइया (मंडली) दोनों प्रकार के सर्प-विषों की चिकित्सा के लिये निरुपयोगी है। शरीर में डाले गये सांप के विष को यह न तो नष्ट करता है और न ही आगे फैलने से रोकता है। इन अन्वेषकों ने छाल और कोंपलों को परीक्षा के लिए लिया था।

मूर्धा के रोग

यूनानी-चिकित्सा में बरगद उत्तमाङ्ग-बलदायक माना जाता है। कोंपलों का लेप करने से व्यङ्ग नष्ट हो जाता है।[२] कपूर को बरगद के दूध में घोट कर आंजने से बहुत बढ़ा हुआ फूला भी नष्ट हो जाता है।[३] कर्णगत व्रण और कृमि-कर्ण में बरगद का दूध कान में टपकाते हैं। सड़े हुये दांतों में बरगद का दूध भरने से पीड़ा शान्त होती है। दन्त-वेदना में दांत और उस के चारों ओर मसूड़े पर दूध का लेप कर देना चाहिये।

बरगद का दूध विशेष रूप से बल्य समझा जाता है। बीज भी शीतल और बलदायक माने जाते हैं।

धातुओं के मारण में

तांबे आदि धातुओं की भस्में बनाने में काम आता है। अभ्रक भस्म में रंग लाने के लिए कोंपलों के काढ़े से भावना देते हैं।

---

१ ... वट शुंगानि पानं मण्डलिनां विषे। — च., चि.२३;१६७।

२ वटांकुरा मसूराश्च प्रलेपाद् व्यंगनाशनम्। — भा.प्र.।

३ वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रञ्चापि घनोन्नतम्॥ — चक्र.।

सहायक साहित्य

इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे जिन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता मिली है उन में से मुख्य की सूची यहां दी जा रही है। इन के अतिरिक्त भी बहुत से साहित्य से सहायता ली गई है। कुछ साहित्य का उल्लेख पाठ्य-सामग्री के साथ-साथ या टिप्पणियों में किया जाता रहा है। स्वाध्याय-प्रेमियों और अनुसन्धान कर्मियों के लिये यह साहित्य मार्गदर्शक होगा।

अंग्रेज़ी साहित्य

रॉक्सबर्घ, विलियम	१८७४	फ़्लोरा इण्डिका।
दे, कनाई लाल	१८९६	इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ़ इण्डिया।
धरगलकर, लक्ष्मण बी.	१८९९	इण्डिजिनस वेजिटेबल ड्रग्स।
गैम्बल, जे.एस.	१९०३	ए मैनुअल ऑफ़ इण्डियन टिम्बर्स।
यूल, हेन्री ऐण्ड बर्नेल, ए.सी.	१९०३	हॉब्सन जॉब्सन।
	१९०८	दि इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ़ इण्डिया।
ट्रूप, आर.एस.	१९२१	सिल्विकल्चर ऑफ़ इण्डियन ट्रीज़, जिल्द ३।
गुप्त, वसन्तलाल	१९२८	फ़ॉरेस्ट फ़्लोरा।
बर्किल, आई.एच.	१९३५	ए डिक्शनरी ऑफ़ दि इकॉनोमिक प्रॉडक्ट्स ऑफ़ मलय पेनिन्सुला, जिल्द १।
बेन्थौल, ए.पी.	१९४६	ट्रीज़ ऑफ़ कलकत्ता ऐण्ड इट्स नेबरहुड।

कीर्तिकर, के.आर. और बसु, बी.डी. — इण्डियन मेडिसनल प्लाण्ट्स, दूसरा संस्करण ।
दस्तूर, जे.एफ. — यूस्फ़ुल प्लाण्ट्स ऑफ़ इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान ।
चार्ल्स मैक्कान — ट्रीज़ ऑफ़ इण्डिया ।
नादकरणी, के.एम. १९५४ इण्डियन मैटीरिया मेडिका ।
चोपड़ा, आर.एन. १९५८ इण्डिजिनस ड्रग्स ऑफ़ इण्डिया, दूसरा संस्करण ।

अन्य साहित्य

चरक संहिता ।
सुश्रुत संहिता ।
मदनपाल निघण्टु; लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रेस, सम्वत् १९९६ ।
राज निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १९२५ ।
धन्वन्तरि निघण्टु; आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १९२५ ।
कैयदेव निघण्टु; मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, सन् १९२८ ।
भावप्रकाश निघण्टु, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, सम्वत् १९९७ ।
द्रव्यगुण विज्ञानम्; जादवजी त्रीकमजी, सम्वत् २००७ ।
संस्कृत-साहित्यमां वनस्पति; बापालाल ग. वैद्य, सन् १९५३ ।
ऐतरेय ब्राह्मण, २य भाग; आनन्दाश्रम मुद्रणालय, सन् १८९६ ।

सर्वे सन्तु निरामयाः

भारतीय-द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला के प्रकाशित ग्रन्थ

[वनस्पतियों तथा भोजन-द्रव्यों पर खोजपूर्ण प्रामाणिक साहित्य निर्माण करने का अपूर्व आयोजन]

लेखक : श्री रामेश बेदी

१. लहसुन : प्याज़ — हमें विश्वास है कि इसे पढ़ कर आप तपेदिक, काली खांसी, असाध्य ज़ख्मों, नासूरों जैसे नामुराद रोगों का केवल लहसुन से ही सफलतापूर्वक इलाज करना जान जायेंगे । मूल्य २.५० ।

२. त्रिफला — प्रत्येक भारतीय से सुपरिचित हरड़, बहेड़ा, आंवला और त्रिफला की अलग-अलग चार अध्यायों में विस्तार से उपयोगिता । सजिल्द । मूल्य ३.२५ ।

३. देहाती इलाज — घर, बाज़ार और देहात में सब जगह मिलने वाली सरल तथा सस्ती चीज़ों द्वारा सुगमता से कठिन रोगों का भी इलाज करने की क्रियात्मक विधियां । राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है । मूल्य १.०० ।

४. शहद — दैनिक भोजनों में और विविध रोगों में शहद को प्रयोग करने के विस्तृत तरीके, असली तथा नकली शहद की पहिचान आदि जानने के लिये और शहद के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये यह पुस्तक आज ही मंगाइयें । सजिल्द । मूल्य ३.०० ।

५. सोंठ — रसोई में प्रति दिन काम आने वाली सोंठ और अदरक से छोटे-मोटे प्राय: सब रोगों का इलाज करने की विस्तृत विधियां । मूल्य १.५० ।

६. तुलसी — हर घर में तथा मन्दिर में बोये जाने वाले तुलसी के पौदे से छोटे-मोटे सैंकड़ों रोगों का इलाज करने की

विधियां। पहले जमाने में क्षय तथा दूसरे असाध्य रोगियों को तुलसी के बगीचों में रख कर ठीक करने के रहस्य भी इस पुस्तक में बताये हैं। मूल्य २.०० ।

७. **मिर्च** — काली, सफ़ेद और लाल मिर्च के भोजनों में और चिकित्सा में उपयोग। मूल्य १.०० ।

८. **पेठा : कद्दू** — जिस पेठे और कद्दू की मिठाई आप की रसना तथा मन को तृप्ति प्रदान करती है, वही पेठा तथा कद्दू अनेक रोगों को भी ठीक करते हैं और भोजनों में उन के अनेक उपयोग हैं। मूल्य .५० ।

९. **सांपों की दुनियां** — भारत में हर साल लगभग तीस हज़ार मौतें सांपों के काटने से होती हैं। उन्हें रोकने में यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण कार्य करेगी। अधिकतर मौतें गांवों में होती हैं इस लिए प्रत्येक गांव के पुस्तकालय में, चौपाल में, ग्राम पंचायत में और गांव के मुखिया तथा पटवारी के पास यह अवश्य रहनी चाहिये। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ५.०० ।

१०. **नीम : बकायन** — चिकित्सा की दृष्टि से ये बड़े काम के वृक्ष हैं जिन के प्रत्येक भाग प्राणिसमाज के लिये लाभदायक हैं। मूल्य १.७५ ।

११. **सर्पगन्धा** — रक्त का ऊंचा दबाव, मानसिक विक्षोभ, विचारों में खोये-खोये से रहना, नींद उचाट हो जाना, पागलपन, वहम, चिन्ता व परेशानी आदि के इलाज के लिये यह चमत्कारी जड़ी अब सारे संसार में प्रसिद्ध हो गई है। इस अद्भुत गुणकारी दवा के उपयोग इस पुस्तक में हैं। मूल्य .७५ ।

१२. **बरगद** — प्रत्येक अङ्ग के विशद उपयोग। वेदों ने भी इस के गुणों की महिमा गाई है। मूल्य १.०० ।

१३. **देहात की दवाएं** — उत्तरप्रदेश में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य (आयुर्वेद) विभाग के उपसंचालक श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी के सुझाव से यह पुस्तक लिखी गई है। देहाती भाइयों तथा सर्वसाधारण के लिये बहुत उपयोगी है। भारत सरकार द्वारा मान्य है। मूल्य .७५।

१४. **तुवरक : चालमुग्रा** — सचित्र, विशद वर्णन। मू० .७५।

१५. **अशोक** — स्त्रियों के रोगों में अत्यन्त लाभकारी अशोक वृक्ष के विविध भागों के विशद गुण तथा चिकित्सा में उपयोग। मूल्य १.००।

१६. **शहतूत** — प्रत्येक भाग के उपयोग। मूल्य .४०।

दो सम्मतियाँ

यदि आप 'भारतीय-द्रव्यगुण-ग्रन्थमाला' के सब अगले ग्रन्थ हमें कृपया भेज सकें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। उन प्रकाशनों में हमारे पुस्तकालय को बड़ी अभिरुचि है और उस साहित्य का यदि रूसी भाषा में अनुवाद किया जायगा तो इस विषय में हम आप को अवश्य सूचित करेंगे। —चेवोतरेव,

डायरेक्टर, लाइब्रेरी, दि एकेडमी ऑफ़ साइन्सेज़,

यू.एस.एस.आर., लेनिनग्राड।

'... this is the first effort of its kind ... . The various species are treated uniformly and systematically...'. — N.L.Bor, Forest Botanist,

Forest Research Institute, Dehradun.

मिलने का पता —

हिमालय वनस्पति संस्थान, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

Bharatiya-Dravyaguna-Granthamala

(Indian Materia Medica Series)

Shri Ramesh Bedi is publishing valuable mono-graphs full of authentic Information on variou plants, drugs and food stuffs under the title o Bharatiya-Dravyaguna-Granthamala (India Materi Medica Series). In this series sixteen monograph have been published and there is a project of publi-shing more than five hundred such monographs. Every book in the series contains the most compre-hensive and almost encyclopaediac information on the subject The style is simple, interesting and the treatment is scientific. The author of the series, Shri Ramesh Bedi has tried in each monograph to give the name of the thing dealt with in as many langu-ages as possible. He has traced its history far into the dim horizon of the immemorial past, outlining the hitherto uncharted map of its commercial export and imports from the earliest times to the present day. He has given its chemical composition, medi-cinal properties, preparations, natural order, vari-ties, botanical description, culture, collection a storage, medicinal, household and commercial u all over the world, economic value, and importar in national commerce, in short everything that known about it.

This Series in indispensable for the gener public, physicians, research workers, pharmacis businessmen, etc.

Subscription for life membership is Rs. 100.00

Subscription for permanent membership is Re. 1.00 only.

Available from -- Himalaya Herbal Institute,
Gurukula Kangri, Hardwar (India).